सर्वाधिकार सुरक्षित

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

धर्म प्रवचन

(दश लक्षण धर्म)

(१५)

(पूज्य श्री १०५ मनोहरलाल जी वर्णी के प्रवचनों का संग्रह)

संग्रहकर्त्ता

श्री ला० मूलचन्द जैन, मुज़फ्फरनगर

—:०❀०:—

कार्यसम्पादक

पं० बिहारीलाल जैन शास्त्री

प्रकाशक—

मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

२०१, पुलिस स्ट्रीट, मेरठ सदर (यू० पी०)

प्रथम संस्करण	भाद्रपद	मूल्य
१२००	वी० नि० सं० २४८०	१)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षकों की शुभनामावलि

१	❀	श्रीमान् ला० महावीर प्रसाद जी जैन वैंकर्स सदर मेरठ	१००१)
२	❀	,, ,, मित्रसैन जी नाहर सिंह जी जैन मुजफ्फरनगर	१००१)
३	❀	,, ,, प्रेमचन्दजी ओमप्रकाशजी निवार वर्क्स मेरठ	१००१)
४	❀	,, ,, सलेखचन्दजी लालचन्दजी मुजफ्फरनगर	११०१)
५		,, ,, शीतलप्रसाद जी जैन मेरठ सदर	१००१)
६	❀	,, ,, कृष्णचन्दजी जैन रईस देहरादून	१००१)
७	❀	,, ,, दीपचन्दजी जैन रईस देहरादून	१००१)
८	❀	,, ,, वारूमलजी प्रेमचन्दजी जैन मंसूरी	११०१)
९	❀	,, ,, वाबूरामजी मुरारीलालजी जैन ज्वालापुर	१००१)
१०		,, ,, केवलरामजी उग्रसैनजी जगाधरी	१००१)
११		,, ,, जिनेश्वरदासजी श्रीपालजी जैन शिमला	१००१)
१२		,, ,, वनवारीलालजी निरंजनलालजी शिमला	१००१)
१३	❀	,, ,, गेंदालालजी दगडूसाहजी जैन सनावद	१००१)
१४		,, ,, वाबूरामजी अकलंकप्रसादजी जैन रईस तिस्सा	१००१)
१५	❀	,, ,, मुकन्दलाल गुलशनरायजी जैन मुजफ्फरनगर	१००१)
१६		,, ,, सुखवीरसिंहजी हेमचन्दजी सर्राफ वड़ौत	१००१)
१७		,, ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्दजी वड़जात्या जयपुर	१००१)
१८		,, ,, भँवरीलाल जी कोड़रमा	१००१)
१९		,, ,, कैलाशचन्दजी देहरादून	१००१)

नोट :—उक्त महानुभाव संस्थाके प्रवर्तक सदस्य हैं। इनमें से जिन सज्जनोंके पूरे रुपये कार्यालयमें आचुके हैं उनके नामके पहले ❀ यह चिन्ह अङ्कित है।

"दो शब्द"

जिन्हें आध्यात्मिक सन्त, शान्तिमूर्त्ति न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलाल जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराजके दर्शन करने व प्रवचन सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह तो जानते ही हैं कि सन्त, शान्तमूर्त्ति, कवि, लेखक, संगीतज्ञ, धर्मोपदेक, आदर्शवक्ता, सब कुछ उन एकमें ही समाविष्ट है। उनकी वाणीमें जादू है, हृदयमें नम्रता है, चेहरेपर शान्ति है, वचनोंमें अमृत है और क्या क्या लिखा जाये सब थोड़ा है। मुझे उनके काफी प्रवचन सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मुझे सदैव इच्छा रही है कि जिन लोगोंको अनेक प्रवचन सुननेको नहीं मिले हैं उन्हें पुस्तकके रूपमें वह प्रवचन पढ़नेको तो कमसे कम मिलें ही। इस आशयको लेकर मैंने उनके कुछ प्रवचनोंका संग्रह किया था जो कि "सुख कहां" नामक पुस्तकके रूप में श्री सहजानन्द शास्त्रमालाकी ओरसे प्रकाशित होचुके हैं। इसबार जयपुर जैन समाजने भी पिछले वर्षके दश लक्षण पर्वमें जो दस धर्मोंपर आपके प्रवचनहुए थेसंक-लन किया है। उन्होंने एक शॉर्ट हैंड ज्ञातासे आपके

प्रवचन नोट कराकर प्रकाशित करानेका विचार किया है। अतः प्रवचन पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो पूज्य श्री महाराज जी साक्षात् हमारे सामने उपस्थित व्याख्यान कररहे हैं। इन प्रवचनोंको पढ़कर भी वही शान्ति प्राप्त होती है जो उनके प्रवचनोंको साक्षात् सुनकर प्राप्त होती है। इस कार्य सम्पन्नमें चातुर्मास कमेटीके सभापति श्री मालीलाल जी दीवान व मन्त्री बाबू सूरजमल जी शाह बी० ए० जयपुर निवासी ने अथक परिश्रम किया है। यह उन्हींका सत्पुरुषार्थ है कि आज हमारे सामने ये प्रवचन 'धर्म प्रवचन' पुस्तकके रूपमें आरहे हैं। हमें इनसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेका प्रयत्न करना चाहिये और भविष्यमें जहाँ भी पूज्य श्री महाराजका पदार्पण हो वहांकी जनतासे मेरी प्रार्थना है कि उनके प्रवचन लिखाकर अवश्य प्रकाशित करायें। बहुतसे लोग इसप्रकारसे उनके प्रवचनोंसे अत्यन्त लाभ उठायेंगे ऐसी मुझे आशा है।

भाद्रपद
वीर निर्वाण सम्वत् २४८०

—मूलचन्द जैन,
मुजफ्फरनगर।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१	उत्तम क्षमा धर्म	१
२	उत्तम मार्दव धर्म	२७
३	उत्तम आर्जव धर्म	४७
४	उत्तम शौच धर्म	६५
५	उत्तम सत्य धर्म	८६
६	उत्तम संयम धर्म	६४
७	उत्तम तप धर्म	१२०
८	उत्तम त्याग धर्म	१३१
९	उत्तम आकिञ्चन धर्म	१४८
१०	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म	१६६

दस लक्षण धर्म

उत्तमक्षमा धर्म

ये दस लाक्षणपर्व आजसे प्रारम्भ हो रहे हैं। इन दस लाक्षणोंके अर्थात् दस धर्मांगोंके ये नाम हैं — क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य। इन दस धर्मों के पालन करने के लिये और इनका स्मरण दिलाने केलिये मानों ये दया करके प्रतिवर्ष आते हैं। पर्व पवित्रोत्सव को कहते हैं। यह पर्व इन दिनों का ही नहीं है किन्तु वस्तुतः यह पर्व आत्मीय धर्मका है। ये दस लक्षण धर्ममय निवृत्तिगर्भ आचरण हमारे में चरम—परम पद पहुंचने में सफल होने तक रहने चाहियें, ये तो आरंभ में व्यस्त जनों के विशेष स्मरण– पालनके अर्थ इन दस दिनोंमें आयोजन हैं। यह भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीसे क्यों प्रारम्भ होते हैं इसका समाधान पुराण इतिहास से यह है कि प्रलयके बाद श्रावणकृष्णा १ से ४९ दिन की सुवृष्टि होती है इसके बाद उत्सर्पिणीका विकास बढ़ने लगता है, प्राणियों के विचारों में उत्कर्ष चलने लगता है। उन ४९ दिनोंके

बाद भाद्रपदशुक्ल पञ्चमी ही आती है। उक्त दस धर्मांगों के स्वरूपका क्रमशः वर्णन होगा जिसमें आज उत्तम क्षमा पर वर्णन किया जा रहा है।

आज उत्तमक्षमा का दिन है। क्षमा आत्मा का गुण है, आत्मामें विकार न आकर सत्य शांति रहना क्षमा है। क्षमा, क्रोधके कितने ही साधन हों उनके निमित्त से हृदय में विकार भाव नहीं आने देती। ऐसी क्षमा का धारण करना क्षमा है और इसका धारण सम्यक्दर्शन पूर्वक हो तो वह उत्ताम क्षमा है ऐसा न समझना कि गृहस्थों की क्षमा और साधु सन्तों की क्षमा उत्तम क्षमा है। साधुजनों के सर्वांश जैसी उत्तमक्षमा होती है उस जाति से सम्यक्दृष्टि गृहजालमें पड़े हुए गृहस्तजनोंके एक देश उत्तम क्षमा होती है।

वास्तव में अपने आप पर ही यह आत्मा क्षमा कर सकता है। लोक में दूसरी आत्मा को न कोई क्षमा कर सकता है और न दूसरे के क्षमा करने से उत्तमक्षमा आ सकती है। यह तो रूढ़ि है कि हमसे कोई अपराध बन जाये तो हम उससे क्षमा माँग लें, ड्यूटी पूरी करलें तो क्षमा हो गई। परन्तु भैया ज़रा विचारो तो सही कि क्या कोई तुम्हें क्षमाकर सकता है अथवा क्या तुम किसी को

क्षमा कर सकते हो। अरे क्षमा तो आत्माका निजधर्म है। मेरा जिस मनुष्य से कुछ बिगाड़ हो गया उससे मैं क्षमा मांगू अथवा किसी ने मेरा अपराध किया तो मैं उसको क्षमा दे दूं तो मेरा धर्म का मार्ग आगे चल सकता है, नही तो नहीं चल सकता, ऐसा अटकाव धर्म के लिये नहीं होता। हम दूसरे को क्षमा ही क्या कर सकते हैं अथवा दूसरा हमें क्या क्षमा दे सकता है, क्षमा तो निजका परिणाम है। कोई द्रव्य किसी परद्रव्यका परिणमन नहीं कर सकता। क्षमा तो सच्ची यह है कि यदि कोई अपराध किया गया तो इस अपराध को ही क्षमा कर दें। निरपराध ज्ञानस्वभाव के अभिमुख होकर अपराध को फिर न होने दें। उसने अपराध किया उसे क्षमा किया तो उस भाव में तो विकल्प ही रहा तथा यदि हम दूसरे से क्षमा मांगने में ही रहे और पुनः पुनः वही अपराध हम करते रहे तो वह क्षमा की दिशा भी नहीं, बच्चों का खेल है और भाई आजकल प्रायः ऐसा ही होता है। वहां हम समझ बैठते हैं कि हमने व इसने क्षमा मांगली चलो छुट्टी हुई। दूसरे से क्षमा मांगो, दूसरे को क्षमा कर या दूसरे के प्रति क्षमायाचना करो इत्यादि विकल्पभावों का बढ़ाना भी तो उत्तमक्षमा का लक्षण नहीं है। विकल्प को तो धर्म नहीं कहते। इसमें तो विकल्पभाव छिपा

हुआ है। अतः क्षमा क्या है, यह जाने बिना विकल्प अवस्था में भी क्षमा की शैली नहीं आती। हां यह बात अवश्य है कि जिसके ज्ञानदृष्टि हुई अपराधसे अरुचि होकर ज्ञानाराधना की ही रुचि हुई उनके विकल्प होता है तो वे क्षमा माँगने जाते ही हैं। वहां भी उसके क्षमा कर देने से क्षमा गुण प्रगट नहीं हो जायेगा। किन्तु मेरे निमित्त से इन्हें क्लेश नहीं रहा इस भाव के बाद परिस्थितियों का सहयोग मिल लेता है जिनके अनन्तर क्षमा प्रगट हो लेती है।

किसी ने कोई कषाय चेष्टा की जिसे हमने अपने बिगाड़ रूप में देखा तो हमें क्रोध आ गया तो हमने उस पर कुछ क्रोध नहीं किया, अपने पर ही क्रोध किया तब ——— तब उस क्रोध के संताप को दूर करने के लिये इच्छा होती है कि इसका बिगाड़ हो जावे या यह मुझसे क्षमा मांगे। देखो भैया मोह में क्षमा की कैसी अटपटी सूरत बना ली जाती है। भैया क्रोध तो तुमने किया तो उसके क्षमा मांगने से क्षमा होगी या तेरे ही सत्य पुरुषार्थ से क्षमा होगी। अपने इस एकाकी चैतन्य भाव को ही देखकर अपने निज ज्ञान स्वभाव की आराधना में लगें तो उत्तमक्षमा प्रगट होती है। क्रोध नहीं करने

को उत्तम क्षमा कहते हैं। जीव किसी पर क्रोध नहीं करता। यह तो स्वयंपर ही क्रोध करता है। स्वयंको बरबाद करता है। स्वयंकी हानि करता है। इसप्रकार क्रोध की बात तो मुख्य हुई, किसी भी प्रकार का विकार न आने देना आत्मगुणों का घात न होने देना सो अपने आप को क्षमा करना है। कोई समझे कि मैं अपने घर में स्त्री सहित बड़े प्रेम से रहता हूँ। मेरे से बाहर वालों का कोई बिगाड़ नहीं होता। बाहर के किसी पुरुष पर या अन्य किसी पर गुस्सा ही नहीं करता फिर हम तो क्षमा-वान ही हैं। हमको कहांसे क्रोधका बन्ध लगेगा। परन्तु ऐसा नहीं है। स्त्री से प्रेम करते हैं और मोह बढ़ा रहे हैं, तभी वे अपने आप पर खूब क्रोध कर रहे हैं। अपने को क्षमा करो, विकार विकल्प की रुचि मत रखो खुद के विकार परिणाम से आत्मा के गुणों का घात होता है। अपनी दया करो। देखो तो ज्ञाता दृष्टा मात्र की परिस्थिति रूप शाँति का भंडार यह चैतन्य स्वरूप भगवान इन पर्यायों के रूप से नष्ट (तिरोहित) हो रहा है, जिससे तुम दुःखी हो रहे हो। इस चैतन्यस्वरूप से क्षमा मांगो, किसी से और कुछ न मांगो। हे चैतन्य स्वरूप ! तेरे में स्वरूपविरुद्ध दो बातें पाई जा रही हैं।

एक तो अंतः प्रकाशमान त्रिकाल में रहने वाला ज्ञान-स्वभाव और ऊपर व्यक्त हुआ उससे उल्टा क्रोध भाव। क्रोध भाव पर का उपयोग रखाने वाला है। जिससे संक्लिष्ट अज्ञानी बनकर इस सरल महान चैतन्यस्वरूप पर अन्याय किया है। अतः हे जीव! ज्ञान स्वभाव का जिसमें तादात्म्य है, ऐसी आत्मा से तू क्षमा मांग। हे व्यवहार तू निश्चय से माफी मांग। व्यवहार कहा जा रहा है कि तू ऐसा सोच अथवा व्यवहार में ग्रस्त अपने को ऐसा सोचना युक्त है—हमारा लक्ष्य तो जब तक विकल्पावस्था है निश्चय के विषय पर अथवा शुद्ध आत्मा पर ही रहना चाहिये परन्तु हम व्यवहार में इतने उलझ जाते हैं कि उसे ही सब कुछ समझ बैठते हैं जहां हमें पहुंचना है वह बिल्कुल भूल जाते हैं। कुछ मलिनता कम हुई या मंदकषाय हुआ तब शुभोपयोग रूप राग होता है वहां दृष्टि गई या वहाँ तक पहुंचे तो उस शुभोपयोग को ही उपादेय समझ बैठते हैं। यह निज चैतन्य भाव पर अन्याय नहीं तो क्या है? अतः हे श्रेष्ठमनवालो! अब हमारा कर्तव्य है कि उस शुद्धात्मा अथवा निश्चय से क्षमा मांगे जिसको हम आज तक भुलाये हुए हैं और क्षमा मांगना ही क्या हम उस शुद्ध

तत्व की ओर अपना लक्ष्य रखें यही उत्तम क्षमा होगी हे वर्तमान पर्याय तू द्रव्य से क्षमा मांग कि मैंने तेरा बड़ा अनर्थ किया। मैं क्रोध में आकर तुम्हारा अब तक अनर्थ करता रहा। तू अनादि से प्रगट है परन्तु मैंने अब तक तुझे ढका ही रखा। जैसी जैसी मुझे पर्याय मिली वैसा ही मैं अपने को समझने लगा। मनुष्य की देह पाई तो मैं अपने उपयोग में निजद्रव्य निजपदार्थ को मनुष्य ही समझा, देव का शरीर मिला, मैं अपने को देव समझने लगा। जरा शरीर गर्म हुआ तब समझा मुझे बुखार हुआ। इस तरह अपने को पर्याय मात्र समझा। परन्तु उन सब पर्यायोंमें सामान्रूयप से सदा एकसा रहने वाला शुद्ध, निर्विकार, निरंजन, ज्योतिर्मय, सर्वसे भिन्न निज परमात्मद्रव्य उसकी सुध भी न ली। अहो! वही तो मैं हूं। तब मेरा, विकृतपर्यायी का, विकार का कितना निष्ठुर व्यवहार रहा। हे निजचैतन्य प्रभो! इससे बढ़ कर तुझ पर और कोई अन्याय क्या हो सकता है? इस तरह अपने आपसे क्षमा मांगो। हे चैतन्य भगवान, मैंने तेरा अपमान किया। तेरी खबर भी नहीं ली। अब मैं क्षमा चाहता हूँ। अब मैं तेरी भक्तिपूर्वक सेवा करूंगा। मैं क्रोध, मान, विषय, कषाय आदि भावों में अपने आपको नहीं लगाऊंगा।

इस तरह के भाव से क्षमा मांगना उत्तम क्षमा है। ऐसी उत्तम क्षमा के धारी ज्ञानी जीव बाह्य में किसी भी तरह का अहित विकल्प नहीं करते। उनका जब जो व्यवहार होता है उससे पर को पीड़ाकारी योग नहीं होता। यदि कोई पर्याय बुद्धिभ्रम से दुःखी हो तो यह दुःखी होने वाले का ही दोष है। ज्ञानी व्यवहार में विरुद्ध नहीं और सत्य क्षमाशील है। किसी दुष्ट के द्वारा पीड़ा दिये जाने पर भी वह भव्यजीव कभी क्षमा भाव को नहीं छोड़ता।

क्षमा करने के कितने ही प्रयोजन हैं। जैसे किसी का किसी बलवान से मुकाबिला हुआ। वह उस बलवान का कुछ बिगाड़ नहीं सकता है, अतः गम खानेकी सोचता है, नहीं तो हड्डी पसली और टूट जायगी। अच्छा जाओ उसे क्षमा करो। इस प्रकार की क्षमा या गम खाना उत्तम क्षमा नहीं है। बलवान का मुकाबिला नहीं कर सकते, इसलिये झक मारकर गम खाना पड़ रहा है और भीतर अनिष्ट बुद्धि ही है यह उत्तमक्षमा नहीं है। क्योंकि मुकाबिला न होने पर भी उसके विरोध का भाव नहीं मिट रहा, उसके अनिष्ट करने की बुद्धि विद्यमान है, इसलिये इसे क्षमा नहीं कहा जा सकता। हां यदि आक्रान्ता

बलवान भी हो फिर भी अनिष्टबुद्धि न होकर सहजवृत्ति से जो गम खाय वह उत्तमक्षमा होसकती है। क्योंकि अनिष्टबुद्धि में क्रोध तो अंतरंग में भड़भड़ाया करता है, परन्तु कायरतावश कुछ नहीं कर सकता। तब क्या वह शांति का लेश भी अधिकारी है? अतः जो गम अथवा क्षमा आत्मा को सुख देवे वही क्षमा है। इसीतरह कोई यह सोचे कि क्षमा करो, क्योंकि क्षमा से लोक में बड़ी प्रतिष्ठा होती है, बहुत आराम मिलता है आदि। इसतरह की क्षमा भी उत्तमक्षमा नहीं है। इससे तो राग द्वारा आकुलता हीतो मची रहती है। उस क्षमामें अपनी लोक प्रतिष्ठा कीही तो बुद्धि आई, उसने आराम बढ़ानेकेलिये ही तो क्षमा की। इसप्रकार प्रतिष्ठामें, आराम में उसको राग हुआ। यह तो आत्मा को बरबाद करता है। इसी तरह कोई साधु यहतो चाहता है कि वह क्षमा करे, किन्तु यदि वह क्षमा यह समझकर कर सकता है कि इनसे स्वर्ग कीप्राप्ति होती है, तो इसप्रकार के भाव से क्षमा करना भी उत्तमक्षमा नहीं है क्योंकि इससे तो उसने मिथ्यात्व को ही बसाया, संसार ही बढ़ाया, अभी तो भ्रम भी दूर नहीं किया, उत्तम क्षमा तो दूर ही है।

उत्तमक्षमा में अनादि, अनन्त, अहेतुक ज्ञानस्वभाव का विशुद्ध विकास है। इस उपादान का विचार करके

इस ज्ञानस्वभाव में क्षमा परिणिति रूप उपयोग को स्थिर रखने से रागादि भाव नहीं आयेगा। ऐसी स्थिति को उत्तम क्षमा कहते हैं। जहां मिथ्यात्व की स्थिति नहीं है, फिरभी क्रोध आये, तो सोचो, "क्या यह क्रोध मेरे स्वभाव से बना है? नहीं क्रोध व्यवहारिक पर्याय है मेरे स्वभावमें नहीं है, मैं इसका ज्ञातामात्र हूँ" इसप्रकार क्रोध का ज्ञान होनेपर भी क्रोधके बिना ज्ञानस्वभाव की जागृति रखना वहां उत्तम क्षमा आंशिक है।

दश लक्षण धर्म से संवर होता है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, और सम्यक्चरित्र से ही तो संवर होता और दशलक्षण धर्म अंतरंग चारित्र है वह सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान का अविनाभावी है। धर्म तत्पूर्वक ही है। अतः जहां सम्यक्दर्शन का लेश नहीं वहां उत्तम क्षमा का आभास नहीं होसकता। मेरा जगत में कोई मित्र नहीं और न कोई शत्रु, मैं तो स्वयं एकाकी हूं। ऐसा ही सोचो तो उत्तम क्षमा की एक झलक अवश्य मिलेगी।

एक साधू था। उसके उपसर्ग आया। उसके भक्तने उसके उपसर्गको दूर किया बचा लिया। परन्तु उपसर्गमें व उपसर्गके बाद साधूको यह विकल्प ही नहीं था कि यह तो उसका भक्त है और यह उसका दोषी है।

उसके यह जाननेका विकल्प ही नहीं आया कि किसने मेरा उपसर्ग दूर किया और किसने उपसर्ग किया । जिसके मनमें मित्र और शत्रु का विकल्प ही नहीं उठता ऐसे साधुओंका वह उत्तम क्षमा धर्म है। भगवान पार्श्वनाथपर कमठने तरह २ के उपसर्ग किये। भगवानके उन उपसर्गों का धरणीन्द्र पद्मावतीने निवारण किया। परन्तु भगवानका यह लक्ष्य ही नहीं था कि कमठ तो उपसर्गका करनेवाला है और धरणीन्द्र पद्मावती रक्षा करनेवाले हैं। इसी वीतरागमय उत्तम क्षमासे अंतरमुहूर्तमें केवलज्ञान होगया।

उत्तम क्षमा वह कहलाती है जिसका न इष्टमें राग जाय और न अनिष्टमें द्वेष ही जाय। जगतमें जितने भी झगड़े होते हैं वे रागभावसे होते हैं, द्वेपभावसे नहीं होते। द्वेपभावसे जितने भी झगड़े होरहे हैं, उन द्वेषोंकी जड़ क्या है? उत्तर मिलता है कि अमुक चीजपर राग था तब उसमें बाधा देनेवालेको हमने द्वेषी समझा। अर्थात् उस द्वेषकी जड़ राग ही हुई। यदि मूल बात विचारो तो यही सिद्ध होता है कि क्रोध रागसे किया जायगा, द्वेष तो क्रोध है ही। इस प्रकार राग ही क्रोध है। परन्तु यह चैतन्य स्वभाव तो स्वयं एकाकी है, यह किसीसे राग क्यों करेगा। ऐसे चैतन्य स्वभावका अवलोकन करनेवाले ज्ञानी मुनि ही होते हैं उन्हींके उत्तम क्षमा होती है, वहां न राग

है न द्वेष है। यदि उनकी विषयोंमें प्रवृत्ति होती तो वे राग का त्याग नहीं कर सकते थे। इस कारण उत्तमक्षमा के धारण कर सकनेवाले नहीं होसकते थे। उत्तमक्षमा सहज स्वभावसे उदयमें आती है। मैं क्षमा करूं तो अमुक लाभ होगा इस भावसे उत्तमक्षमा नहीं होती। एक राज्य में राजाज्ञा हुई कि कोई चोरी न करे और १०,००० से अधिक सम्पत्ति न रखे। तो जो राजाज्ञासे चोरी नहीं कर सकता या जिसने १०,००० से अधिक सम्पत्तिका त्याग कर दिया तो क्या वह परिग्रह त्यागी बन गया? नहीं, राजाज्ञासे उसने सम्पत्तिका त्याग किया, परन्तु हृदयमें तो तृष्णा है। सम्पत्तिसे उसका राग तो नहीं गया। अतः तृष्णा और राग होने के कारण वह परिग्रह त्यागी नहीं हुआ। इसी तरह उत्तमक्षमा भी जबर्दस्तीसे नहीं होती है, अहेतुक स्वभावकी दृष्टिमें क्रोध स्वतः नहीं रहता। क्रोध के करनेसे दुर्गतिमें चले जावेंगे यह समझकर क्रोध न होने देनेका परिश्रम करना भी उत्तमक्षमा नहीं कहला सकती ऐसे अभिप्राय पर्याय बुद्धियोंको ही होते हैं। परन्तु ज्ञानी इसके लिये क्रोध नहीं करता। उसके तो क्रोध राग भाव रहित ज्ञान स्वभावपर ही लक्ष्य रहता है ऐसा ही आत्मीय स्वलक्षण जहां समझा गया वहां क्रोधभाव स्वतः नहीं होता। ऐसा उत्तमक्षमाका स्वरूप ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानीके

कदाचित् यदि क्रोधभाव भी रहता तो भी भेदविज्ञानके बलसे अंतरमें उत्तमक्षमाके अंश रहते ही हैं। हमको तो यह चाहिये कि कहींसे कुछ भी बात आये, कुछ भी उपसर्ग आये, उससे लक्ष्य हटायें, दृढ़ भेदविज्ञानका सहारा लें और उपयोगके शुद्ध लक्ष्य पर होनेके बाद अभेदस्वभाव में स्थिर होकर क्षमाशील रहें। जैसे मानलो कोई तुम्हें मार रहा है वहाँ तुम यह समझलो कि यह मुझे तो नहीं मार रहा है इस शरीरको ही मार रहा है। परन्तु शरीर तो मैं नहीं हूँ इस विवेकसे क्षमा आ ही जायगी। मानलो व्यवहारमें यदि कोई गाली गलौच अथवा बुरा भला कह रहा है तो तुम समझ सकते हो कि यह मुझे तो नहीं कह रहा, जिसने कुछ किया है उसे कह रहा होगा। जिसको कह रहा हो कहले यह उसके कषायका विपाक है। वह इस चैतन्य स्वभावको तो नहीं कह रहा है, यह समझकर उन बुरे वचनोंको भी पी जाये अर्थात् उपेक्षित करदे। इसीको उत्तमक्षमा कहते हैं क्योंकि ऐसा विचार करनेसे उसे अवसर मिलता है कि वह अनन्तर निर्विकल्प तत्त्वको अवलोकन कर इस प्रकरणमें उसके दिलमें क्रोधभाव उत्पन्न ही नहीं होता।

एक आदमी अपने सुसराल गया। सास बड़ी कंजूस थी। भोजनका समय आया तो उसने बहाना बनाया कि

रसीली और स्वादिष्ट वस्तुओंके खानेसे नुकसान होता है। अच्छी भोज्य वस्तु तो खिचड़ी ही है। अतः खिचड़ी ही बनाई है। वह आदमी ताड़ गया। वह खिचड़ी ही खाने बैठ गया। उसमें सास ने घी नहीं डाला था, सो वह आदमी उसमेंसे एक एक दाना ही खावे।- सास ने पूछा तो उसने बताया कि आदत हमारी ऐसी है कि हम बहुत घी खाते हैं और बिना घी इस खिचड़ीको खा नहीं सकते। सास थी चतुर, उसके पास एक भगोनेमें जमा हुआ घी रखा था। उसने सोचा चलो खिचड़ीको घी की हवा ही दिखादें। उसने भगोनेको खिचड़ी पर उलटकर जहांका तहां रख दिया। वह समझ गया। उसने अवसर पानेके लिये पानीका लोटा लुढ़का दिया। सास बाहर पानी लेने गई, इतनेमें उसने भगौनेको आग पर रख दिया और पुनः भगौनेको यथास्थान रख दिया। सास आई तब उसने पानी पीकर उससे फिर घी मांगा। सासने पहलेकी तरह फिर भगौनेको उलट दिया। अबकी बार सारा घी खिचड़ी में आगया। सासको बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि हमारा तुमसे बड़ा स्नेह है इसलिये हम तुम्हारी थालीमें बैठकर खाना खायेंगे। वह बैठ गई और उसको बातोंमें लगाकर इस तरहका प्रयत्न किया कि साराका सारा घी उसकी तरफ आजाय। वह खिचड़ीमें अंगुलीसे घीके आने

के लिये रास्ता बनाती जाये और कहती जाये कि तुम्हारे बापने, तुम्हारी मां ने, तुम्हारे भाईने, आदिने मेरी बेटी को इस इसतरह तंग किया। इतनेमें घी एकतरफ आगया। वह आदमी सेरको सवासेर था। तब वह आदमी उत्तर देता है कि तुम्हारी लड़कीको कोई कुछ भी कहे उस सब को उसे यों पीजाना चाहिये। यह कहते हुए उसने अंगुली में सारा घी बटोरकर पी लिया। सो भैया! हमें भी चाहिये कि कोई हमें कुछ कहे, गाली दे हमें सब बातोंको पीजाना चाहिये अर्थात् उपेक्षा कर देनी चाहिये अर्थात् अन्य लोगोंकी प्रवृत्तिकी उपेक्षा कर देनी चाहिये या फिर इसतरहसे पीजाना चाहिये कि फिर यहाँ परिणाम द्वेषको प्राप्त नहीं होसके। कुछ दिनोंका ही यह जीवन है। फिर किसीसे विरोध क्यों पैदा करना। इस थोड़ेसे नर जीवनको पाकर चैतन्य भगवान, जो निर्मल आत्मामें विराजमान हैं, उनको निर्मल बनाओ। जिनके किसी भी पदार्थ का विषय लेकर क्रोध भाव रहता है, ऐसी जगह भगवानका स्वरूप विराजमान नहीं होता। क्रोध अग्निके समान माना गया है। वह अग्निके समान नगरियों तकको भी जला दिया करता है। वह क्रोध महती आग है। जो भी उसके तेजस्वके रूपमें आता है, उसको वह भस्म कर देता है। साधूमें रहनेवाले भी क्रोधका स्वरूप बताया गया है कि

चांडाल चीज़ साधूमें कोई है तो वह क्रोध है। साधू अपने आपकी सुध नहीं रखता, यदि क्रोध उसके पास हो। अतः जिस प्रकार भी अपने चैतन्य स्वभावकी सुधपूर्वक जो क्षमा आवे वही उत्तमक्षमा है। ऐसी क्षमापरिणतिको धारण करो।

उत्तमक्षमा तीनों लोकोंमें सार है। सार किसे कहते हैं? जो उत्कृष्टपनको प्राप्त करले, उसे कहते हैं सार। ऐसी उत्तमक्षमा तीनों लोकोंमें सार है। कहते हैं क्षमा हने औरको, क्रोध हने आपको। क्षमा करनेसे तो दूसरा नीचा देखता है, परन्तु क्रोध करनेसे तो स्वयंकी ही हत्या हो जाती है। एक सेठ और सेठानी थे। सेठानी बड़ी कर्कशा थी। रोज़ाना जब देखो तब उसका बड़बड़ करते ही समय बीतता था। परन्तु सेठजी थे शांत, ज़रा भी क्रोध नहीं करते और सेठानीके उस क्रोधको पीजाते थे। बहुत दिन इसी प्रकार बीत गये। एक दिन सेठजी भोजन करके अच्छे २ कपड़े पहिनकर सीढ़ियोंसे उतरकर जा रहे थे। सेठानीकी उपेक्षा करके जब वे सीढ़ियाँ उतर ही रहे थे तो सेठानी ने उन्हें क्रोधभावसे देखा। वहां थोड़ासा धौन रखा था। सेठानीको ऐसा क्रोध आया कि उसने वह धौन सेठजीके ऊपर डाल दिया। सेठजीको गुस्सा तो नहीं आया, परन्तु वे बोले तू गरजी तो बहुत थी, पर बरसी

तू आज है। सेठानी पर घड़ों पानी पड़ गया वह बहुत शर्मिन्दा हुई। उसको विचार हुआ कि इतना उपद्रव करने पर भी इनके अंतरमें क्रोधभाव नहीं आया। अपने पर उसे बड़ी ग्लानि हुई और वह सेठजीके पास आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ी और कहा कि मुझे क्षमा करो। आजसे मैं क्रोधका त्याग करती हूँ। इस तरह देखो भैया! क्रोध से कर्म बन्ध होता और अपने आपमें आकुलता बढ़ानेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता। किन्तु क्षमासे स्वयं और अन्य भी सुखी रहते हैं। यह उत्तमक्षमा तो क्रोधके अभावसे ही पैदा होती है। क्रोध करके कोई चाहे कि मैं क्लेशसे छूट जाऊं यह असम्भव है। उत्तमक्षमा ही जन्ममरणरूपी संसारसे छुटकारा दिलानेवाली है। क्रोध करके कोई इस संसारसे तिरनेवाला नहीं है। क्रोध तो व्रत, संयम, तप, चारित्र सब गुणोंपर पानी फेर देता है। व्रत, संयम, चारित्र, दुनियांका परोपकार आदि सर्वगुण क्रोधके रहते हुए नहीं रहते। इसके विपरीत उत्तमक्षमा दुर्गतिके दुःखोंको हरनेवाली है और रत्नत्रयकी रक्षा करने वाली है।

उत्तमक्षमा सम्पूर्ण गुणोंके साथ रहनेवाली है। ऐसा नहीं होगा कि कोई सोचले कि मैं उत्तमक्षमा रखलूं और गुण रहे या न रहे। उत्तमक्षमा वहां ही रहती है जहां

और सब गुण भी रहते हैं। इसके आते ही और गुण भी प्रगट होने लगते हैं। मुनिजन उत्तमक्षमाको नहीं छोड़ते। ज़रा भी अवसर क्षोभभावके पैदा होनेका आवे तो स्वाभाविक सत्य शान्तिकेलिये वे बहुत विह्वल रहते हैं। उनकी आकुलता तब तक नहीं मिटती जब तक वे क्षमाभावको नहीं पा लेते। जब वे क्षमाको प्राप्त करनेकेलिए ऐसा अंतरंग तप करते हैं तब हमें तो जिनको सदा क्रोधकी संभावना रहती है बहुत ही सावधान रहना चाहिये। हमारी तो विजय इस सत्यश्रद्धा पर है कि "मैं परका कुछ नहीं कररहा हूं" फिर मुझे क्रोध कहां ? "मैं परको करता हूँ" इस प्रकारका मिथ्यात्व ही उस व्यक्तिकेलिये क्रोध बन गया जिसने ऐसा विचार किया कि मैं परका कर्ता हूँ। अतः आत्मासे इस क्रोधभावको मिटाओ। जहां वस्तुका स्वरूपका बोध होजाता है वहां यह सोचता है कि परपदार्थ चाहे जैसे परणमों इससे मेरा कोई सुधार बिगाड़ नहीं है। यदि कोई उपसर्ग भी हमपर करे, कोई गाली भी देवे, तो एक उपाय यह करे यह समझें कि यह हमारी परीक्षा करनेकेलिये तो नहीं कहरहा है। एक पाकेटमार किसीकी पाकेटमेंसे नोट निकालरहा था। नोट निकालता हुआ वह पकड़ागया तो बोलता है कि मैं तो आपकी परीक्षा कर रहा था कि आपको ध्यान भी रहता

है या नहीं। आप सावधान भी हो या नहीं। अतः यदि किसीने गालीगलौच दी भी तो सोचलो कहीं यह परीक्षा तो नहीं कर रहा है। पहले ही क्रोधी बन जाओगे तो जब वह यह कहदेगा कि मैं तो परीक्षा कर रहा था तो तुम्हें नीचा देखना पड़ेगा। अथवा क्रोध करनेपर वह यह कह सकता है कि मैं तो परीक्षा कररहा था कि आपमें क्रोध भी आसकता है या नहीं। बहुतसे तो सचमुच हमारी परीक्षा लेनेकेलिये क्रोध करानेका प्रयत्न करते हैं। अतः परीक्षाका ठीक रखना और मनमें क्षोभभावको नहीं लाना। अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके ज्ञानोपयोगका परिणमन होना तो उत्तमक्षमा है। अपनी दृष्टि निर्मल बनाओ, विशुद्ध एक ध्येय बनालो फिर सत्य स्वव्यवसाय चल उठेगा, फिर कोई शक्ति विचलित नहीं कर सकेगी। एक लौकिक दृष्टान्त है कि एक किसान था। वह कभी अपनी पत्नीको पीट नहीं पाता था, क्योंकि उसकी पत्नी बहुत शांत स्वभावकी थी। वह हमेशा सोचा करता था कि मैं क्या काम करूं जिससे इसे पीट पाऊं। वह सोचा करता कि किसी न किसी तरह इसे क्रोध आये ताकि इसके एक दो धमाके लगानेका अवसर तो आवे। एक बार वह खेती कर रहा था। खेती के समय दो बजे उसकी औरत उसे रोटी देने आती थी।

उस दिन औरतके आनेके समय उसने हलके दोनों बैलों का मुंह एक दूसरेसे उल्टा करदिया ताकि हल नहीं जुते और औरत देखे तो क्रुद्ध होजाय और मुझे उसको पीटने का अवसर मिले। जब स्त्री आई तो उसने यह सब दूरसे ही देख लिया और सब समझ गई कि यह तो सब हमारे पीटनेके लिये तैयारियां हैं, वरन् ऐसी बेवकूफी तो कभी नहीं करते थे। तब उसने क्रोध न करके केवल यह उत्तर दे दिया कि "चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा जोतो, मेरा तो रोटी देनेका काम था, सो लीजिये।" यह सुनकर किसान निरुत्तर होगया। सो भैया! हमें भी ऐसा सोचना चाहिये कि कोई भी पदार्थ चाहे उसके अनुकूल परिणाम हो चाहे प्रतिकूल, हम उसमें क्या कर सकते हैं और मेरा उससे सुधार बिगाड़ ही क्या? वह तो अत्यन्ताभाववाला पदार्थ है, इस प्रकारकी श्रद्धा रखनेवाला ज्ञानीजीव कठिन से कठिन उपसर्ग आने पर भी अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख रहता है। मैं भी तो ज्ञानस्वभावी ही हूं। अतः कोई कितना भी उपसर्ग करे मैं निज ज्ञानस्वभावसे क्यों चिगूं, तथा हमारी ओरसे यदि शान्त प्रवृत्ति रहेगी तो उसका भी क्रोध हमपर रह नहीं सकता। तत्वज्ञान पूर्वक शांत होना उत्तमक्षमा है। ज्ञानीजन अपनी उत्तमक्षमाको नहीं खोते। जहां क्षमाभाव आगया, वहां उसे चिंतामणि

मिल गया, जिसके होते जो विचारो सो मिल जाये वह चिन्तामणि कहलाता है। जिसके होते जो सोचे वही मिल जाये ऐसा चिन्तामणि कोई पत्थर है क्या? नहीं, चैतन्य-भाव की दृष्टि का नाम ही चिन्तामणि है। ज्ञान-स्वभाव दृष्टि होनेपर जगतमें कोई इच्छा नहीं होती तब सभी मिल गया सो यह उत्तमक्षमा चिन्तामणि है। इस उत्तम-क्षमा से ही स्थिर मन होता है। क्रोध होने पर मन में स्थिरता नहीं रहती। तभीतो कहते हैं– कहीं का कोई ऐसा पत्र आवे कि जिसको पढ़नेसे क्रोध पैदा होजावे तो उसका उत्तर कल लिखो। इसका कारण यह है कि क्रोधभाव में योग्य क्रिया नहीं हो सकती। क्रोधभाव मन को स्थिर नहीं होने देता।

क्रोधीका कोई सत्कार नहीं करता। उसको सब लोग टालते हैं, उपेक्षा करते हैं और सम्मान नहीं करते। इष्ट-अनिष्टबुद्धि ही क्रोध लाती है अतः इष्टको इष्ट मत समझो। क्योंकि कुछ इष्ट समझने पर उसके बाधकपर क्रोध आया करता है। जब किसीभी पदार्थमें इष्टबुद्धि ही न करोगे फिर क्रोध आयेगा कैसे? अर्थात् इष्टबुद्धि न रखने पर क्रोध आयेगा ही नहीं। क्रोधसे इहलोक परलोक दोनोंमें ही हानि होती है, किंतु क्षमा से दोनो लोकों में शाँति रहती है और लोकभ्रमणसे जल्दीही छूट जाता है। उत्तम

क्षमाशील लोगों की तीनों लोकों में पूजा होती है। यह उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार दूर करने केलिये सर्वज्ञान-धारी मुनिकी तरह है। जिसके उत्तमक्षमा है उसमें मिथ्यात्व का अन्धकार नहीं रहता। अपनी आत्मा को जगत में एकाकी समझो। मित्रता-शत्रुता की कल्पना मत करो, किसी को दुःख आपके निमित्त से हुआ हो तो, चाहे वह छोटा ही हो उसके पास जाकर उसका दिल साफ करदो कहो कि मेरेसे बड़ी गलती हुई है मुझे क्षमा करदो। और अपने विषय में ऐसा सोचो कि यदि कोई मेरा दोष बखानकर सुखी होना चाहता है तो सुखी रहे। कोई गालीगलौच देकर सुखी होना चाहता है, या धर्म लेकर सुखी होना चाहता है, होवे। किसीभी प्रकार वह जीव सुखी हो परन्तु मेरे निमित्त वह दुखी नहीं होना चाहिये। यदि किसी अधीर से ज्ञात हो—कोई पीठ पीछे हमारी बुराई भी कररहा था तो करे, परोक्ष में ही तो कर रहा था सामने तो नहीं कररहा था। जिस परिवार में सब ही लोकों की ऐसी प्रवृत्ति हो वह परिवार सुखी ही रहता है। क्षमाशील व्यक्तिका हरएक कोई सम्मान करता है। आगरेके भगवतीदासजी थे। उन्हें एक आदमी ने आकर कहा कि आपके लिये अमुक आदमी ऐसे कह रहा-था। उन्होंने उत्तर दिया कि वह कह रहा था या नहीं कह रहा

था मुझे पता नहीं, परन्तु तुमतो मेरे सामनेही कह रहे हो। अतः सोचना चाहिये कि कोई कुछभी करे, परोक्ष में ही तो करता है, सामने तो नहीं करता। सामने भी कहे तो अपनी जीभ ही तो चला रहा है, पीटता तो नहीं, यदि पीटे भी तो उससे शरीर का ही तो आघात है प्राण तो नहीं लेता, प्राण भी ले तो सोचते हैं मेरे रत्नत्रय रूप अंतरंगका तो आघात नहीं करता अर्थात् भावप्राण तो नहीं ले रहा है, द्रव्यप्राण ही तो ले रहा है, जो त्रिकाल रहते नहीं हैं। इस तरह ज्ञानी शुद्ध अन्तर्ज्ञेय में ही परणमते रहते हैं। वह मेरे अन्तर्ज्ञेय को तो कुछ भी क्षति नहीं पहुंचाता। यह बात सुनकर कोई भाई मन में हँस भी सकते हैं, परन्तु भैया जब ज्ञान-दृष्टि होजाती है तो ज्ञानस्वभाव की निर्मलता ही प्रिय होती है।

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञानं रक्षन्ति योगिनः।
ज्ञानं स्ववृत्तिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वेसुखी स्वयं ॥

उत्तम क्षमा वहां प्रगट होती है जहाँ असमर्थों के दोषों को भी क्षमा कर दिया जाय। असमर्थ ने यदि दोष किया है तो उसको भी क्षमा कर देवे। यहां भी बड़े२ लोगों की ऐसी ही प्रकृति होती है कि छोटे२ लोगों से, सेवकों से अपराध बन जाय तो उसे क्षमा कर देते हैं। आज तो वैसे ही आजादी है। नौकर पर गुस्सा

नौकरपर गुस्सा करोगे तो वह कहेगा व.वूजी लो यह रखी आपकी नौकरी और यदि आप उसे क्षमा करदो तो वही तुम्हारा सेवक होजायगा। असमर्थ तो वह है ही, अब उसके दोषोंको क्या अपने में लगाए रखना? उसको क्षमा करदेना। बनारसीदासजी राजदरबार में जारहे थे। वह रास्ते में पेशाब करने बैठगए। वहांपर पहरा देनेवाले सिपाहीने उनके एक थप्पड़ लगादिया। बनारसीदासजीने उसे कुछ नहीं कहा और उन्होंने उसका नम्बर नोट कर लिया और दरबारमें जाकर राजासे कहा कि अमुक नम्बरके सिपाहीको बुलाओ। सिपाही आया तो उसने बनारसीदासजीको दरबार में देख लिया और वह थर-थर कांपने लगा। सोचा अरे ये तो वे ही हैं जिनके मैंने थप्पड़ लगाया था, पता नहीं आज मेरा क्या होनेवाला है? बेचारा कांपने लग गया। बनारसीदासजीने उससे पूछा, "तुम्हें कितना वेतन दिया जाता है?" उसने समझा अवश्य मेरा वेतन कम किया जायगा। उसने डरकर कहा "१० रुपये"। तब उन्होंने राजाजीसे कहा कि राजन्! इसके २ रुपये बढ़ा दीजिये। सिपाहीने सोचा कि कहीं ये मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं। बनारसीदासजीने फिर कहा कि ये सिपाही बड़ा ईमानदार है। मैं रास्तेमें लघुशंका करने बैठा तो अपनी ड्यूटीका पक्का निकला और मुझे रोक दिया। क्षमाशील पुरुषोंकी

ऐसी ही बातें होती हैं। यहींका (जयपुर का) किस्सा लीजिये। अमरचन्दजी दीवान थे। ऐसा ऐलान राजदरबार से हुआ कि शेरको वे खाना खिलायेंगे। शेर मांस खाता था और अमरचन्दजी जैन थे इसलिये मांस खिला नहीं सकते थे। उन्होंने जलेबीसे भरा थाल मंगाया और थाल लेकर पींजरेमें खुद ही घुस गये और शेरसे बोले, हे वनराज! यदि आपको मांस ही खाना हो तो मैं आपके सामने खड़ा हूँ, खालो और पेट ही भरना है तो जलेबी को खालो। यह कहनेपर शेर ने वह जलेबी ही खालीं। दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। जिन्होंने आत्मस्वरूप जाना और उसीको सबमें निरखा, उनसे सबकी मित्रता ही रहती है। इसलिये ही कहा है कि क्षमाशील पुरुष हमेशा सुखी रहते हैं और जिनके क्षमा नहीं है वे सदा दुखी रहते हैं। ऐसे क्रोधसे कोई लाभ नहीं जो स्वयं को दुखी करे। क्षमा वह कहलाती है जहां असमर्थोंपर भी क्रोध नहीं किया जाता उपद्रुत होनेपर भी ज्ञानस्वभाव से चिगना नहीं हुआ वह कहलाती है उत्तमक्षमा। अन्य के दोषको क्या देखते हो जो क्रोध होरहा है इस अपने महान् दोषको क्यों नहीं देखते? स्वयंमें जो औपाधिक दोष है, उसे दोषरूप समझ लेना क्षमाकी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि पानेका मंगलाचरण है। क्षमा वहाँ मिलती है जहां

चैतन्य गुणोंमें चित्त वसा रहता है। अतः उत्तमक्षमा भगवानका वासा है। उसकी आराधना करो और मोक्ष-मार्गमें लगो। अपने आप चैतन्यस्वभावकी दृष्टि रखे रहो। उत्तमक्षमा धारण करनेवालेके आत्मस्वभावमें स्थिरता होनेसे स्वभावका निरुपधिक स्वच्छ विकास होता है और पूर्ण विकास होनेपर स्वयं शान्तबुद्ध शिवस्वरूप भगवान होजाता है। यह उत्तमक्षमा आत्माका रूप है। इस स्वरूपमें यह आत्मा है। इसी आत्माका यह क्षमा पर्याय है। उत्तमक्षमा कहीं बाहरसे लानेकी चीज़ नहीं। अपने स्वरूपमें रुचि लक्ष्य करो, विभावसे मुख मोड़ो, क्षमा सुतरां आवेगी। ऐसी उत्तमक्षमाको धारण करो। जिसके उत्तमक्षमा होती है उसे मनुष्य भी, देव भी, सभी नमस्कार करते हैं। यह तो मात्रलौकिक चमत्कार है, तात्विक फल शाश्वत सत्य शान्ति है। ऐसी क्षमा सम्यक्-दर्शनके विना नहीं होती अतः तत्वज्ञान पूर्वक सम्यक् उत्तमक्षमावान रहना चाहिये।

: दो :

उत्तम मार्दव धर्म

"मृदोर्भावः मार्दवम्" कोमलताके परिणामको मार्दव धर्म कहते हैं। परिणामोंमें वास्तविक कोमलताका आविर्भाव सम्यग्दर्शनके बिना नहीं होता। वस्तुस्वरूपके बोध बिना परस्पर सम्बन्ध कर्तृत्वबुद्धि पर्यायबुद्धि आदि अभिप्रायसे भाव कठोर ही कहलाते हैं जिसमें शुद्ध चैतन्यानुभवामृतका प्रवेश नहीं होता। जिसने उत्तममार्दव को भले प्रकार समझ लिया है, जिसकी दृष्टिमें "उत्तममार्दव हमारा चैतन्यस्वभाव है" इस प्रकारका विचार व श्रद्धान आगया है उस महात्माके उत्तममार्दवका चैतन्यस्वभावमें भान होते ही मानकषायें अपने आप निकल जाते हैं। मानकषायके न होनेको ही उत्तममार्दव कहते हैं। इसीका आज विवेचन है। मैं इसको करनेवाला हूं व मैंने इसको बनाया, पाला आदि मिथ्या अभिप्रायवश जीवका अहंकार बना रहता है और इसी अहंकारभावसे यह जीव चाहता है सम्मान और होता रहता है अपमान। ऐसे मानका आदर ही संसार है। यह मार्दव संसारका मर्दन करनेवाला है। औपाधिक

व परकीय अवस्था करने रूप संसारको नष्ट कर देता है। मानकषायका सर्वथा नाश कर देता है। मार्दव और मान कषाय दोनों आत्माकी पर्याय हैं। इसमें एक स्वभाव पर्याय है और दूसरी औपाधिक पर्याय है। जिस कालमें मानकषाय रहता है उस कालमें आत्मामें मार्दवधर्म नहीं रहता और जिस कालमें मार्दवधर्म रहता है उस कालमें आत्मामें मानकषाय नहीं रहता। यह मार्दव दया धर्ममें चित्तको दृढ़ करता है। मार्दव गुणधारी अन्यको दुखी देखकर दयार्द्र होजाते हैं। घमंडी पुरुष दया धर्म नहीं कर सकते। यह मार्दवधर्म आत्माका अविनाशी गुण है। मार्दव आत्माका स्वभाव है अतः मानकषाय रहनेपर भी शक्तिरूप व यथायोग्य विकासरूप यह रहता ही है। इसी से सब जीवोंका हित होता है। व्रत, तप, संयम आदि सब मार्दवके बिना निष्फल होजाते हैं। क्योंकि आत्म-स्वभावकी सरलता बिना यह जीव व्रतादि प्रवृत्तियोंमें आत्मीय बुद्धि कर लेता है। जो कुछ बनता है वह संसार में भटकता है। सहजपरिणाम बिना सर्वआपदा है।

एक साधू और एक शिष्य कहीं देशाटनको जारहे थे। रास्तेमें उन्हें रात होगई। वे एक राजाके बागमें जाकर ठहर गये। वहां दो कमरोंमें दो पलंग बिछे हुए थे। उन्होंने सोचा कि दोनों इनपर ही लेटकर रात बितादें।

साधू ने शिष्यको सावधान कर दिया कि देखो कुछ भी हो तुम कुछ बनना मत, नहीं तो आफ़त आजायगी। दोनों ही अलग २ कमरोंमें कुछ संध्या-सी और कुछ विचार-सा करने बैठ गये। तनेमें राजा और उसके सिपाही वहां आये और देखा कि राजाके आरामके कमरों में वे दोनों बैठे हैं। पहले वे शिष्यके पास गये और पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो? शिष्य बोला कि तुम्हें दीखता नहीं कि हम साधू हैं। तब सिपाहीने कहा, चल हट यहांसे, आया है साधू बनने, निकल! और ऐसा कहते हुए उसे मारपीटकर बाहर निकालदिया। फिर वे गुरुके पास गये और उससे भी यही पूछा। गुरु तो चिंतनमें लगे हुए थे इसलिये कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप ही रहे। इससे राजा बड़ा प्रभावित हुआ और कहा कि अरे सिपाहियों, ये तो महात्मा हैं, विवेकी हैं, इनपर उपद्रव मत करो। इसी तरहसे इनको सम्मानसहित उठाकर अन्यत्र विराजमान करदो। ऐसा ही किया गया। शिष्य यह सब देख रहा था। जब गुरुजी वहाँ आगये तो वह शिष्य उनके पास जाकर बोलता है कि महाराज! मैं तो बहुत पिटा और आप आरामसे कैसे आगये? गुरुजीने पूछा कि तू कुछ बना तो नहीं था? तब शिष्य बोला, नहीं महाराज, मैं तो कुछ भी नहीं बना, उन्होंने मुझसे

पूछा था कि तुम कौन हो, तो मैंने उत्तर दिया कि देखते नहीं मैं साधू हूँ। तब गुरुजीने कहा कि इसीलिये तुम पिट गये कि तुम साधू बने। सो भैया, जो बनता है वह पिटता ही है। यहां भी तो देखो बना ही तो जारहा है कि मैं धनी हूँ, विद्वान हूं, गोरा हूँ, कुटुम्बी हूं आदि, परिणाम यह होता है कि कर्मोंकी मार हमपर पड़ती है।

ये पर्यायबुद्धिकी ही तो बातें हैं। किसी भी पर्याय में 'यह मैं हूं' ऐसी बुद्धि मत करो, तो परिणमनकी अनुकूलता व प्रतिकूलता देखकर भी आप विह्वल नहीं होंगे। परन्तु यहां तो सब बनते हैं और जो बनते हैं वे कुटते हैं और नहीं बनेंगे तो कैसे कुटेंगे? परोपकार करके भी मान की बात कहदो तो वह उपकार या अहसान सब मिट जायेगा। अच्छा भोजन करादो और अच्छा जीमन करादो और मान करो या कहो कि कैसा अच्छा भोजन बनाया कभी ऐसा आपने खाया भी है, तो वह भोजन कराना भी सब बेकार होजायेगा। प्राणियोंका अपमान दुःख आदि अनिष्ट तन, मन, वचनकी प्रवृत्तियोंसे होता है, जिनके वस्तुत्वका श्रद्धान है और इसी कारण ममत्व न होनेसे हृदय स्वच्छ होगया है उनकी प्रवृत्तियां स्वपरकी बाधक नहीं होतीं। जिनके परद्रव्यमें आत्मीयताकी मान्यता नहीं, क्रोधादि विभावोंमें आत्मीयताकी श्रद्धा नहीं, मान नहीं,

मानका भान नहीं, उस विवेकी के कर्तृत्वबुद्धि नहीं हो सकती और कर्तृत्व न होनेसे वह शान्त, योग्य प्रवर्तक तथा कल्याणार्थियोंकेलिये आदर्श होजाता है। किन्तु इसके विपरीत जिनके भाव मिथ्यात्वमानसे ग्रस्त हैं उनको कभी शांति प्राप्त नहीं होसकती। उनसे सर्वत्र विसंवाद ही बढ़ता है।

ज़ितनी लड़ाइयां आज जगतमें दीखती हैं वे सब मान कषाय कीही तो लड़ाइयां हैं। ये मुसलमान है ये हिन्दू है यह हमारे धर्म का है इसलिये इसका उद्धार करो अन्यमें तो मानो चेतना भी न हो। इसप्रकार की मान्यताएं ही लड़ाई का कारण हैं। कहींतो सिरफुटौवल भी होजाती है। यह सब मान-कषायों ही का तो फल है। सब जीवों पर एकसमान चित्त रखो द्रव्यदृष्टि पर कभी तो दृष्टिपात करो कर्मकृत विविधतामें क्यों सीमित हुए जारहे हो? खेद है 'पाकिस्तानमें ऐसी बाढ़आई कि गांव के गांव बहगए' यह खबर अखबारमें पढ़कर हिन्दुस्तान के लोगोंका दिल फूल गया और यहांसे गजट पाकिस्तानमें जाये कि बिहार में बाढ़ आई तो पाकिस्तानी फूले नहीं समाते। यह मेरा है इसलिये अच्छा है और यह परका है इसलिये बुरा है। जहां इसप्रकार की भावना हो वहां आत्मकल्याण तो बहुत दूर की चीज है वे तो लौकिक सुख के भी पात्र नहीं हैं।

देखो भैय्या ! जो कुछ भी सम्पर्कमें आया है वह रहता जाता ज़रा भी नहीं परन्तु उन विषयक अनेक मान्यताओं के कारण, इस प्रकारकी पर्यायबुद्धिके कारण, ममत्वबुद्धि के कारण ही अनादिसे यह जीव संसारमें भटक रहा है और महान दुखी हो होरहा है। इसका इतना कड़वा फल चख रहा है फिर भी आंख नहीं खुलती। अरे भाई ! निगोदसे निकलकर व अनेक दुर्गमनसे निकलकर यह नरजन्म पाया तो विवेक करलो—मैं आत्मा सबसे न्यारा अपने ही परिणामोंमें परिणमने वाला हूं, देह, कर्म, आदिकी क्रिया मेरी परिणतिसे नहीं है, फिर मेरा जगत्में क्या है ? मानकषाय छोड़ो। त्याग करो तो उसमें भी मान न हो। दान भी दो तो धर्मबुद्धिसे दो। उसीका अच्छा फल मिलेगा। मिथ्यात्वबुद्धिसे मान करके दान मत दो कि यदि मैंने इस जगह इतना दान दे दिया तो प्रशंसा होगी वह दान कहां रहा ? कषाय ही तो बढ़ी। इस मार्दवधर्मके होते ही सारे व्रत और धर्म सफल होते हैं। मानसे किये हुए व्रत तप भी निरर्थक हैं। व्रत लेवे तो नाम यशकी ख्याति चाहना, तप करे तो तपस्वीपन की प्रसिद्धिकी अपेक्षा करना कितना गहन अंधकार है। जो आत्मशुद्धिके लिये चारित्र है उसके दिखावेसे अपनी ही बरबादी करते हो। यह मार्दवधर्म उन सब मानकषायों

का नाश करनेवाला है और ५ इंद्रिय और मनका निग्रह करनेवाला है। इंद्रिय विषयोंके सेवते हुए अज्ञानभावमें मान आया करते हैं, रसगौरव तो बहुत संभावनीय है। किसी वस्तुके स्वादकी वजहसे भी मान नहीं करना चाहिये। परके लक्ष्य होनेपर कोई न कोई जातिकी मान-वृत्ति होजाती है। देखो भैय्या, और तो जाने दो कभी त्याग करके भी तो पदार्थोंको नहीं खा रहे हैं, ऐसा सोचने में मान आजाता है। काजू और मूँगफली दोनोंके स्वाद में खास फर्क नहीं, किन्तु मूंगफलीके मुकाबिलेमें काजू बहुत मंहगी है, इसलिये काजूका स्वाद अच्छा लगने लग गया। इस आसक्तिको मान मदद कर रहा है परकी रुचि अपने आपमें मानकपाय तपाये बिना कैसे होगी? जिसने निर्मानस्वभावी निजको देखा उसे स्वादमें क्या आसक्ति होगी, वैषयिक बात सोचना ही मानसे होपाता। इसीतरहकी प्रक्रिया पांचों इंद्रियोंमें आजाती है। मानसिक विषयक मान तो बड़ा ही भयंकर है, महायुद्धका मूल मानसिक मान है। मानसे दुनियांमें सब लोगोंका बिगाड़ भी होता और अपनाभी बिगाड़ होता है। कोई सोचता हो मैं चतुर हूं मेरा हठ रहना ही चाहिये तो वह चतुर नहीं। उसे सवाया कोई मज़ा चखानेवाला मिल ही जाता है।

एक स्त्री बड़ी हठीली थी। वह हमेशा यही सोचा

करत थी कि मैं पतिको किस तरह छकाऊं। एक दिन उसके मनमें आया कि अब तो पतिकी मूंछ मुड़ाऊं। यह सोचकर वह पेटके दर्दका बहाना करके पड़गई। डाक्टरजी आए, उन्होंने पूछा कि पहले भी कभी दर्द हुआ, उत्तर मिला कि नहीं हुआ। काफी प्रयत्न किया परन्तु दर्द न मिटा। तब पतिने पूछा कि दर्द कैसे मिटे तो उसने उत्तर दिया कि मेरे कानमें कोई आवाज़ देगया, शायद वह देव होगा, एक उपायसे ही तुम्हारी जान बच सकती है, जो तुम्हारा सबसे अधिक प्रिय हो वह सुबह पहले ५ बजे अपनी मूंछ मुंडाकर तुम्हें अपनी शक्ल दिखाये तो तुम्हारा दर्द मिट जायगा अन्यथा प्रातः मृत्यु होजायगी। पति उसको बहुत प्यार करता था, इसलिए उसीने अपनी मूंछे मुड़ाई और सुबह ५ बजे उसे अपनी शक्ल दिखाने आया। तब स्त्री हंसी और बोली "अपनी टेक रखाई, पतिकी मूंछ मुड़ाई" और रोज़ाना सुबह ५ बजे वह चक्की पीसते समय यही गाना गाये। पति सब समझ गया। उसने भी एक चाल चलनेकी सोची। उसने अपने सुसराल लिख भेजा कि तुम्हारी लड़की बहुत ज्यादा बीमार होरही है, काफी प्रयत्न करनेपर भी ठीक नहीं होती और मरनेकी तैयारीमें है। हमको आज स्वप्न में देवोंने बताया है कि यदि इसके पीहरके सबके सब

प्रियजन अपना सर और मूंछ मुड़ाकर सुबह ५ बजे आकर उसको शक्ल दिखावें तब ही उसकी तबियत ठीक होसकती है। पीहरमें सबको वह लड़की प्रिय थी, इसलिए सबके सब अपना सिर और मूंछ मुड़ाकर उसे देखनेको आये। जब अपनी आदतके अनुसार स्त्री कह रही थी "अपनी टेक रखाई, पतिकी मूंछ मुड़ाई" तो इतनेमें पति बोल उठा, "पीछे देख लुगाई, मुंडनकी पलटन आई"। इसतरह हठवालेको जब सवासेर मिलजाये तो पता लग जाता है। हठका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता। हठीको नीचा देखना ही पड़ता है।

मानकषायसे इस लोकमें भी सुख नहीं है और परलोकमें भी सुख नहीं है। यहां तो मानीको हर कोई नीचा दिखानेकी घातमें रहता ही है और परलोकमें भी मानकषायके द्वारा बंधे कर्मके उदयको निमित्त पाकर उसे कुगतिमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। मानकषाय अपने हृदयसे निकालदो और यह तभी निकाल सकते हो जब आत्माके स्वभावको पहचानो। अरे किस चीज़पर मान करते हो? धन, वैभव, सम्पदा, पुत्र, मित्रपर? अरे, न मालूम कितनी बार तो चक्रवर्ती होलिये, कितनी बार महाराजा होलिये, कितनी बार देवोंमें जाकर पुण्यके ठाठ भोगे, यहां ज़रासी सम्पदापर जो कि पूर्व भोगी हुई

सम्पदाके सामने न कुछ ही समझो—क्यों इतराते हो, काहे को मान करके दुखी होरहे हो ? और भैय्या ! ज़रा सोचो तो तुम्हारी आत्मा तो अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य स्वभाव वाली है फिर इन थोड़ेसे चांदी सोनेके टुकड़ोंको पाकर, कुछ पुत्र पुत्रियोंको पाकर क्यों अपनेको कुछ समझ बैठे हो ? अरे, अपने इन्हीं गुणोंका विकास करो त्रिलोकके पदार्थ तुम्हारे चरणोंमें आपड़ेंगे। इसकेलिये अधिक मुसीबत सहनेकी आवश्यकता नहीं। मात्र हंसीसे उत्तममार्दव धर्मका पालन होसकता है।

जब मार्दवधर्म होता है तभी अर्हन्त भगवानमें भक्ति होती है और जिसके घमंड होगया वह कैसे भक्ति कर सकेगा ? घमंडका मर्दन हो तभी भगवानकी भक्ति हो सकती है। यदि भक्ति चाहते हो तो मानकषायको हृदय से बिल्कुल निकालो। चक्रवर्तियोंके भी इतनी बड़ी भारी विभूति थी, वह भी उनके साथ नहीं रही तो मैं उनके आगे क्या हूं ? हम यहाँ कितनी-सी सम्पत्ति पाकर मान करें। किनको पाकर मान किया जावे। भगवानको देखो सब कुछ उन्हें वैभव प्राप्त है और वे हैं कि आंख उठाकर भी इधर नहीं देखते, अपनाना तो बहुत दूरकी बात है। यहाँ भी देखो तो बड़े २ विद्वान मिलेंगे हमसे बढ़ २ कर, बड़े २ धनी मिलेंगे हमसे अधिक, बड़े २

कीर्त्तिशाली मिलेंगे हमसे कहीं अधिक, कुटुम्बमें भी ज्यादा हमसे बहुतसे मिलेंगे तो फिर हम उनके सामने किस बात का मान करें। यह मान तो हमें बहुत ही दुखी करनेवाला है। इस मानको तो हमें दूर करना ही होगा। इस मानके मर्दनसे ही हमें अनन्तसुख मिल सकेगा।

एक आदमी था। बी०ए० तक पढ़कर आया, बहुत हट्टा कट्टा था। एक नदी पर गया। वहां एक नाव खड़ी थी। नाविक से बोला कि हम घूमनेकेवास्ते आये, हमें घुमाओ। नाविक घुमाने लगा। घूमते हुये वह नाविक से पूछता है कि तुमने कुछ पढ़ा लिखा है। आज का जमाना शिक्षा का है। नाविकने इन्कार कर दिया तो वह बोला बेवकूफ, गधे, नालायक, कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा? ऐसे लोगों ने ही हिन्दुस्तान को बर्बाद किया। नाविक ने यह सब कुछ सुना। जब आगे चले तो नदी के बीच में नाव डगमगा गई और डूबने लगी। नाविक ने पूछा कि बाबूजी तैरना सीखा? तब उसने उत्तरदिया "नहीं सीखा बचाओ भाई" नाविकने उत्तरदिया कि कुछभी तैरना नहीं सीखा? बेवकूफ, नालायक, गधे, ऐसे लोगोंने ही हिन्दुस्तानको बरबाद किया। इसतरह यदि कोई चाहे कि वह सर्व गुणों में परिपूर्ण हो जाये तो कैसे होजाये? कोई न कोई बात की कमी होती ही है। केवल ज्ञानमें ही सब विद्याओं की

पूर्ति होती है, पहले नहीं हो सकती। दुनियांका ज्ञान, यह तो सब नष्ट हो जाने वाली चीजें हैं। इनसे बुद्धि हटाकर एक चैतन्यस्वभाव को देखो, उसी को निरखो और उसी में प्रसन्न (स्थित) रहो। यह मार्दवचित्त में कुबुद्धि को नहीं आनेदेता। बातचीत में दूसरों के अनिष्ट की बात निकल जाये, यह घमंड ही की तो बात है। यदि मान न हो तो सदैव हित के ही वचन मुँह से निकलेंगे। मार्दव धर्म घमंडका नाश करता है। दर्शन, ज्ञान, चरित्र, ये रत्नत्रय मार्दवधर्म से ही बढ़ते हैं। जिसके मानकषाय नहीं होती उसकी दुनियां में बुराई नहीं होती और मानी को सदा निन्दा होती है और उसे अपमान सहना पड़ता है। कहा भी तो है "मानी का सिर नीचा"। यह बड़े २ नेता इसी मार्दव के कारण तो बड़े बन गये। मानसे तो कुछ भी नहीं मिलता। मार्दवधर्म से तो अनेक लाभ हैं, परन्तु मानकषाय से तो कोई लाभ नहीं है। मानकषाय से तो जीव दूसरों का अपमान करके मान चाहता है। परन्तु परका अपमान करके स्वयंका मान त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। मार्दवमें गुणके विद्यमान होते दूसरों पर तुच्छदृष्टि नहीं आती। मार्दव को तो बताया गुण और मानको बताया अवगुण। आज उस मार्दव की हत्या करते हैं और दूसरों का अपमान करके अपना मान चाहते

हैं। परिणाम होता है कि दुखी रहते हैं। इस मार्दव से मनुष्य न्याय प्रवृत्त होता है। मार्दव गुणधारी की प्रवृत्ति कभी भी अन्याययुक्त नहीं होती। अन्याय तो तभी हो सकता है जब अपने को लोकमें ऊंचा दिखानेकी बात हो। इस मार्दवधर्म से लोकमें अनेक तरह के विरोध और शत्रुता समाप्त होती है। मार्दव से ही परिणाम निर्मल होते हैं। जिस जीव को अपने विषय में यह ज्ञात है कि मैं आत्मा एक त्रैकालिक तत्व हूं, सदैव रहने वाला हूं, कभी नष्ट नहीं होऊंगा, और सब तो नष्ट होने वाली चीजें हैं और इसीतरहसे जगतके सारे पदार्थ नष्ट होनेवाले हैं, ऐसी जिनको श्रद्धा है वे मानकषाय नहीं करते और मान करें भी तो किस चीज का जब सभी चीजें नष्ट हो जानेवाली हैं। मैं तो बड़ा बलवान हूं, विवेकी हूं, चतुर हूं, मनकी यह श्रद्धा आत्माको नष्ट करनेवाली है। यह पर्यायबुद्धि है। पर्याय सदैव नाशवान है, उनमें अपनत्व मानकर अनेक नाश होनेपर दुखी होता है। समझ रहा है कि मैं बलवान हूँ, कलको शरीरमें कमज़ोरी आजाती है दुखी होजाता है। आज धनी है, धन नष्ट होनेपर या उसमें कमी आजानेपर महान परेशान होता है इत्यादि। इसप्रकार पर्यायबुद्धि सदैव दुःख देनेवाली है और यह पर्यायबुद्धि मानके उदयमें होती ही है। और ऐसी बुद्धिसे

ज्ञानका मरण होजाता है। मार्दवधर्मके बिना आत्माके परिणाम निर्मल नहीं होते। जब आत्मस्वभावकी पहिचान हुई, विषयोंसे मन हटा, पर पदार्थोंसे अरुचि हुई और मार्दवधर्म प्रकट हुआ।

मार्दवधर्मसे इस लोक और परलोक दोनोंके कार्य सिद्ध होते हैं। नम्र पुरुषोंका हरएक आदर करता है। बड़ेसे बड़ा काम भी मृदुता से बनजाता है इसके विपरीत मानी पुरुषको हर जगह लज्जित ही होना पड़ता है। मृदु परिणामी पुरुषका आगामी भव भी सुधर जाता है। एक बार राजा भोज अपने पलंगपर लेटा हुआ कविता बना रहा था। एक बड़ा विद्वान कवि, यह सोचकर कि पैसा तो मिलता नहीं इसलिये चोरी करें, राजाके यहां चोरी करने गया। वह राजाके कमरेमें घुस गया। राजा जग रहा था, जब कुछ खड़बड़की आवाज़ हुई तो उसे सुनकर वह राजाके पलंगके नीचे छिप गया। राजा लेटा २ उस समय अपने वैभवका विचार करकरके बड़ा प्रसन्न होरहा था और उसके वर्णनस्वरूप कविता बना रहा था। राजाने पहली पंक्ति बनाई "चेतो हरा युवतयः सुहृदोनुकूला" अर्थात् मेरे पास ऐसी २ रानियां हैं जो सदा मेरे चित्तको प्रसन्न करती रहती हैं। दूसरी पंक्ति उसने बनाई "सद्बा-न्धवाः प्रणति गर्भगिरश्च भृत्याः" अर्थात् मेरे मंत्री ऐसे

हैं जो मेरे अनुकूल हैं, जो मैं चाहता हूं वही वे भी चाहते हैं। अच्छे २ मेरे भाई हैं और अनुकूल भी हैं कि मुझे नमस्कार करते और विनयभरी बातें भी करते हैं। तीसरी पंक्ति उसने बनाई "गर्जन्ति दन्तिनिव हस्तरलातुरङ्गाः" अर्थात् हाथियोंकी शालामें मेरे बड़े २ हाथी और घोड़ों की शालामें घोड़े हिनहिना रहे हैं। इतना बनालेनेपर उससे चौथी पंक्ति नहीं बनी और वह काफी सोचता ही रहा। नीचे वह चोर कवि सब कुछ सुन ही रहा था, उससे रहा नहीं गया झट चौथी पंक्ति बोलता है "संमलिने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति" अर्थात् राजन्, आँख मिच जानेपर ये सब तेरे भी नहीं हैं। जब मनुष्य मरता है तब वह इन सब बाह्य पदार्थोंको छोड़कर चलाजाता है। कोई पदार्थ भी एकक्षण साथ देनेमें समर्थ नहीं है, यहीं पड़े रहजाते हैं। जिस समय सिकन्दर बादशाह मरने लगा तो उसने अपने मंत्रियोंसे कहा कि भाई जिस समय मेरी अर्थी श्मशान भूमिको लेजाई जावे तो मेरे दोनों हाथ अर्थीसे बाहर निकाल देना ताकि दुनियां देखले कि जब यह आया था तो मुट्ठी बंद किये आया था और जब यह जारहा है तो इतना वैभव होते हुए भी खाली हाथ जारहा है। तो भाई, आनाजाना कुछ साथ नहीं है व्यर्थमें मोह बढ़ा २ कर दुखी होरहे हो। जीवनभर तो उनमें

रागका संस्कार लगाता है और मरते समय छोड़ते हुए बहुत दुःख होता है। वैभवकी बातको भी छोड़ो, प्यारी स्त्री, प्यारा पुत्र, धन सम्पत्ति जिनको एक समयकेलिये भी अपनेसे विलग नहीं करना चाहता था सब कुछ मरते समय छूट जाता है। उस समय कोई साथ नहीं देगा। और की तो बात जाने दो, यह शरीर जो हरसमय इसके साथ ही रहता है, जिसके पोषणमें यह न्याय अन्याय कुछ भी नहीं देखता वह भी इसका साथ निभानेमें असमर्थ रहता है।

एक सेठने अपना सब धन अपने पुत्रोंमें बांट दिया। अपने हिस्सेका धन उसने भीतमें गाड़ दिया। मरते समय लोगोंने उससे कुछ दानपुण्य करनेकेलिये पूछा। उसकी जुबान बन्द हो चुकी थी, इसलिये उसने इशारेसे बताया कि सामनेकी दीवारमें मेरे हिस्सेका सारा धन है, वह सब का सब मैं दान करता हूँ। लोग कुछ समझे नहीं, उन्होंने लड़कोंसे पूछा कि भाई तुम्हारा पिता क्या कह रहा है? तो लड़कोंने उत्तर दिया कि पिताजी कहते हैं कि मेरे पास धन कहां है, वह तो इन दीवारोंके बनानेमें खर्च होगया अर्थात् मकान आदि बनानेमें तमाम धन लग गया, अब मेरे पास बचा ही क्या है। लड़कोंको तथ्यका पता था और पिताके भाव भी जान गये, परन्तु लोभमें उनके भी

भाव बदल गये। उन्होंने सोचा कि यदि यह धन दानमें न दिया गया तो हमारे ही हिस्सेमें आजावेगा। इसतरह मरते समय पुत्र हो चाहे कोई हो हरएकके भाव बदल जाते हैं। जिन्दा कोई नहीं रहनेवाला है, मरना तो है ही, जैसे चाहो मरो। मरते समय प्रियसे प्रिय आदमीके भाव भी बदल जाते हैं। वह सोचने लगते हैं कि मरनेवाला तो मर ही जायेगा, काहेको धन भी बरबाद किया जाये। मार्दवधर्मके बिना संसारके सारे जीव दुखी होते हैं और मानकषायमें लगे रहते हैं तथा परिणामोंमें निर्मलता नहीं आती। मानकषाय अज्ञानियोंमें ही सबसे ज्यादा रहता है, ज्ञानियोंमें नहीं रहता। उनके ही मार्दवधर्म प्रगट होसकता है जिनके मोह नहीं है। मार्दवधर्मसे यह लोक और परलोक दोनों लोक सिद्ध होते हैं। रावणका यह लोक और परलोक भी मानकषायमें ही मिटा। रावणको हुए १० लाख वर्षके करीब होगये और आजतक भी सबको उसका नाम सुनते ही घृणा-सी होती है। तो यह मान-कषायका ही तो प्रभाव है। वह स्त्रीके लोभसे नहीं मरा, वह तो मरा मानसे। पहले तो रावणके परिणाम यही थे कि मैं सीताको अपने यहां रखूं, लेकिन जब बहुत कुछ समझाने बुझानेपर भी सीता टससे मस न हुई तो रावण ने विचार किया कि सीता तो वापिस करनी ही है।

रामने भी कहा कि भाई तुम सीता देदो चाहे तुम मुझसे कुछ भी लेलो। सीताके लौटानेके परिणाम होते हुए भी रावणको उस समय मानका उदय आगया। उसने मानमें कहा सीता को दूंगा तो ज़रूर परन्तु मैं सीताको ऐसे नहीं दूंगा, रामको जीतकर तब दूंगा। उसमें सीताको लौटाने की उदारता तो आई, परन्तु ताकतसे देनेका मान भी रहा। इस मानकषायके कारण ही वह मरा। इसके कारण वह नरक भी गया और अपना यह लोक भी बिगाड़ा। आजकल कई लोग मन्दिर बनवाते हैं, परन्तु इसलिये कि उनका नाम होजाये। वह मन्दिर उनका कहलाये। इसके लिये किसी भी पंचका एक भी रुपया नहीं लेते, जो कुछ भी लगे उसमें मेरा ही लगे, नहीं तो यह पंचायती कहलायेगा और मेरा नाम नहीं रहेगा। ये सब मानकी बातें हैं। भाई, इन बातोंमें क्या रखा है। मिलकरके काम करो। अब भी कई लोग ऐसे हैं जो बड़ा मन्दिर बनाकर कहदेते हैं कि यह तो पंचायती मन्दिर है। यह हस्तिनागपुर क्षेत्रका मन्दिर है। जब यह पूरा बन चुका कलश चढ़ना बाकी रहा तो उसके बनानेवालोंने पंचायतसे कहा कि भाई मेरे पास धन समाप्त होगया है, चन्दा करना है। सब भाइयोंने चन्दा दिया और कलश चढ़ाया गया। कहां तो यह परिणाम थे कि सब कुछ बनवाकर भी उसमें

अपनापन नहीं रखते थे और कहाँ यह परिणाम कि ज़रा कुछ बनवाते हैं और उससे बड़ा उसपर नामका पत्थर लगवा देते हैं। हस्तिनागपुरके मन्दिरपर बनवानेवालोंका नाम तक भी नहीं है। कितने निर्मल परिणाम थे उनके? इसलिये मानकषायका परिणाम अपने मनमें रहा तो कुछ नहीं होसकता। परपदार्थ भी दिया तो वह तो अपना था ही नहीं, फिर किस बातका घमंड? सम्पदाके रहते हुए, भोगते हुए, दान करते हुए, किसी बातका घमंड नहीं होना चाहिये। मार्दवधर्मसे दोनों लोकोंका सुधार होता है। कौवे भी क्वार वदी १ से क्वार वदी १५ तक घमंड करते हैं, परन्तु उसके बाद उनके घमंड कुछ नहीं होता। इसीप्रकार घमंडी चाहे कुछ दिन इतराले परन्तु अन्तमें झुकना ही पड़ेगा। इसलिये हमें तो घमंड बिल्कुल नहीं करना चाहिये। मार्दवधर्मसे यह मनुष्य तीनों जगत्को मोहित कर लेता है।

मार्दवधर्म से जैन-शासनका ज्ञान होता है। मानी पुरुष तो अपने घमंड में ही रहता है। ज्ञान, बिना विनय के नहीं आसकता और विनय मार्दवधर्म का प्रधान अंग है। पहलवानी करके किसी शक्तिसे कोई ज्ञान थोड़े ही बढ़ता है, वह तो विनय से ही बढ़ता है। यह आत्मा तो मार्दवधर्म से ही ज्ञानको जानता है। जैसे कहावत है कि

बन्दर समुद्र को लाँघकर लंका चले गये, परन्तु समुद्र में जो रत्न थे उनका उनको ज्ञान कहां था? इसीतरह मार्दव धर्मके बिना कुछ भी नहीं जान सकते कि इस जैन शासन में क्या २ रत्न भरे पड़े हैं। मार्दवधर्म के द्वारा ही आत्मा का सच्चा स्वरूप जाना जासकता है।

एक आदमी राजाके दरबार में कोरा कागज़ लेकर गया और अपने आपको बड़ा कवि कहता और कहता कि मैं एक बहुत अच्छी कविता बनाकर लाया हूँ। तब उससे कहा गया कि अच्छा अपनी कविता दिखाओ। तो उसने वह कोरा कागज़ दे दिया और कहा कि कविता उसे ही दीखती है जो असल बापसे हुआ है। जिस किसी ने उस कागजको देखा तो कहा कि कविता बड़ी सुन्दर है। यदि कहदेवे कि इसमें तो कुछ नहीं है तो नकली बापके होजावें। इसलिये सबने कहा कि कविता तो बड़ी सुन्दर है। राजा से भी कहागया कि महाराज आप भी देखो। राजाने भी देखा। वहाँ था तो कुछ नहीं, परन्तु ऐसा कह दिया जाता तो शानमें धब्बा लगजाता, इसलिये राजाने भी कहा कि यह तो बड़ी सुन्दर है। इसलिये सब लोग अपनी शान और मान बचानेकी फिक्रमें लगे कि हमारी शान और मान रहजाये इसमें बिगाड़ न होजाय। इस जगत्में और कुछ भी नहीं है। परन्तु भैया, शान तो इससे नहीं बचती।

ज्ञान तो सम्यक्‌दर्शन से बचती है। एक सम्यक्‌दर्शन को पहचानो, जगत्‌के पदार्थोंका जो सत्यस्वरूप है उसकी श्रद्धा करो तो जगत्‌में कुछ बिगाड़ नहीं होसकता। मार्दवधर्म और विनय-भावके द्वारा मनके सारे दोष दूर होजाते हैं। मार्दवधर्म जन्ममरणासे इस जीवको पार करदेता है। एक इस निर्मल मार्दवधर्मको धारण करो। अपनी आत्माके शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें स्थिर रहो, इसीको उत्तम मार्दवधर्म कहते हैं।

: तीन :

उत्तम आर्जव धर्म

वस्तुस्वरूपको जानकर सरल पवित्र ज्ञानमय निजब्रह्म की अभिमुखता पाना समस्त वक्र-विभावोंसे दूर होना सो वास्तविक आर्जव है। इस स्थितिमें मायाका अभाव होता है।

यह आर्जवधर्म उत्कृष्ट लक्षणोंपर आधारित है। सरलता कितनी अच्छी चीज है। सरल पुरुषोंकी कितनी उत्कृष्टबुद्धि रहती है। आर्जवधर्मका उत्कृष्ट लक्षण सरलता

है। आर्जवका अर्थ है कपटरहित यानि सरलभाव। कपटी मनुष्यको सदैव चिन्ता बनी रहती है कि कहीं मेरा कपट प्रगट न होजाये और जब एक बार कपट प्रगट हुआ कि लोगोंकी दृष्टिमें मनुष्य गिरजाता है और वह ज़िन्दगीभर दुखी रहता है। जब लोगोंकी दृष्टिसे कपटी गिरजाता है तब एकान्तमें कहीं पड़ा सड़ २ कर उसको मरना पड़ता है। जिसका आदर नहीं उसका जीना भी मरणतुल्य है। कपट महान अधर्म है। माया यानि कपट तो शल्य है यह तो कांटेकी तरह सदा चुभती रहती है, एक क्षण भी चैन नहीं लेने देती। जगतका स्वरूप जानकर कपटका त्याग करो। पड़ौसियोंके, कुटुम्बके लोगोंके, सगे संबधियों के सबके विश्वासपात्र बनो और सबसे बड़ी चीज़ अपने विश्वासपात्र बनो। जो मनमें हो सो ही वचनमें हो और जो वचनमें हो वही कार्यकी चेष्टा हो। कभी किसीके प्रति अहितकी भावना न रखो इसीसे आर्जवधर्म होता है। वह धर्म सब पापोंका क्षय करनेवाला है। जिसके हृदयमें यह धर्म है, या कुटिलता जिसके हृदयमें कभी नहीं घुस सकी, उसके हृदयमें जैन-शासन सरलतासे समझमें आजाता है। अपने हृदयको सरल बनाना चाहिये। जिसका हृदय सरल है वह जैन-शास्त्रका ज्ञान आसानीसे कर सकता है। मानी

अथवा कपटीका चित्त स्थिर नहीं रहता। आर्जवधर्मकी सेवा करो। इस धर्मका पालनकरो और ध्यानसे सुनो।

जो जीव जैसा अपने में विचार करता वैसा ही दूसरे के लिये कहे और वैसा ही करे तो उसे कहते हैं आर्जव धर्म। आर्जवधर्मका पालन नहीं करनेवाले तथा कपटको बनानेवाले लोग आप अपने प्रति कपट करते हैं। दूसरों के लिये कपट करनेवाले अपने आप खुद कपट के गड्ढे में गिर जाते हैं। जो दूसरों के लिये गड्ढा खोदता है वह स्वयं दुःख के गड्ढे में गिर जाता है। उसका कोई बचाने वाला नहीं होता। उसका यह पाप, कपट उसका विश्वास खो देता है। कपटी को बहुत बातें बनानी पड़ती हैं। कहीं कुछ और कह दिया और कहीं कुछ और कह दिया। सामने भला कह दिया और पीठ पीछे बुरा कह दिया, यह ही तो कपट है। कपट बहुत दिनों नहीं निभता, कभी एक साथ ही उसका कपट प्रगट हो जायेगा और लोक में उसका विश्वास नहीं रहेगा। कपटसे मनुष्यको इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें दुःख उठाना पड़ता है। इस लोकमें तो जगजाहिर है कि कपटीके जिस समयसे उसके कपटके परिणाम होते हैं वह बहुत संक्लिष्टत रहता है और कपट प्रगट होनेपर तो जो उसकी दशा होती है उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता, वह

जीता भी मरेके समान होजाता है, कहीं आदर नहीं, कहीं पूछ नहीं और परलोकमें "मायांतैर्यंग्योनस्य" माया तिर्यञ्च गतिका साक्षात् कारण बताया ही गया है। जो तिर्यञ्च गतिके दुःख मायाचारीको भुगतने पड़ते हैं वह भी किसीसे छिपे नहीं हैं। इसलिये सरल पुरुष ही धर्मका अधिकारी है। धर्मको सरल परणीतिसे जल्दी ही जाना जासकता है। कपटी मनुष्य धर्मको क्या जानेगा? वह तो धर्मको जाननेमें भी कपट ही करता रहता है। लोग समझते हैं कि यह तो सुबहसे पूजा करता है, शास्त्र स्वाध्याय करता है, घंटों मन्दिरमें लगाता है, परन्तु भैया! कपटी दूसरोंको तो धोका दे सकता है परन्तु अपने आप को तो धोका नहीं दे सकता। फल तो उसे अपने परिणामों का भोगना ही पड़ेगा। बिना सरलताके धर्मके मार्गपर नहीं चला जासकता। धर्मके मार्गपर तो सरल पुरुष ही चल सकेगा।

आर्जवगुण कपट करके नहीं बल्कि सरल प्रकृतिसे पाया जासकता है। कपटसे किया हुआ कोई काम, कपट से कमाया हुआ धन, छलसे बनाई हुई इज्जत, और कपट से किया हुआ धर्म सब बेकार है कपटको छोड़कर सरलताके मार्गसे चलो तो अपने आपको शान्ति मिलेगी और बनना होगा तो उस मार्गसे अपने आप ज्ञानी बन

जायेगा। परन्तु कपटी मनुष्यका चित्त तो हमेशा व्याकुल रहता है, उसके चित्तमें तो धर्मकी गंध भी नहीं आ सकती। सरल पुरुषोंमें आज्ञाकारिता, बड़ोंका सत्कार आदि गुण सहज ही होजाते हैं। बड़े शास्त्रज्ञ धर्मका हृदय नहीं पासकते और सरल मनुष्य कुछ भी करते हुए वक्रता के अभावमें शांति पाते रहते हैं। शास्त्रका विशेष जानकार कपटी पुरुष भले ही होजायें, परन्तु जो शास्त्र-स्वाध्याय का फल सुख-शांति होना चाहिए वह उसको छू तक भी नहीं जाता। और मायाचारसे रहित पुरुषको चाहे शास्त्र-ज्ञान थोड़ा हो परन्तु सरल चित्त होनेसे उसमें शांति बनी रहती है और भैय्या, धर्म भी तो इसीको बताया है।

धामनी नामक एक गांवमें एक साधूने प्रवचनमें एक दिन लोगोंसे कहा कि रातको पानी नहीं पीना चाहिये। दूसरे दिन प्रवचनमें लोग कम थे। तो उसने लोगोंको बुलाकर पूछा कि आज इतने कम आदमी क्यों आये? तो उत्तर मिला, महाराज! आपने रातको पानीका त्याग करवा दिया था। हम भूठे तो नहीं चले आते। इसलिये खाना तो रातको खालिया, परन्तु पानी न पी सकनेके कारण हमसे आया नहीं गया। तब साधूने कहा कि जहां रातको पानीका ही त्याग होगया, वहाँ खाना खानेकी बात भी नहीं उठती। सरल आदमियोंकी ऐसी ही बातें

होती हैं। उनके दिलमें साधूकी दूसरे दिनकी बात भी आगई और उन्होंने रातको खानापीना बिल्कुल छोड़ दिया। इसप्रकार सरलभावके कारण कुछ दिनोंमें वहां धर्मभाव पूराका पूरा भर आया। गांवके गांवमें धर्मबुद्धि आगई। कुटिल आदमियोंको तो कोई चीज़ प्रवेश कर ही नहीं सकती, धर्म तो दूरकी चीज़ है। उसके पास कोई गौरव नहीं और वह निरन्तर दुखी रहता है। इसलिये कहा जाता है कि हे भव्यजीवो, मायाको हृदयसे निकाल दो। मायाचारी प्राणी करता तो प्रयत्न दूसरोंके बिगाड़ का है, होजाता है स्वयंका बिगाड़। एक कथा है :—

एक शेर कीचड़में जा फंसा। एक गीदड़ किनारेपर खड़ा था। उसने गीदड़से कहा कि तुम मेरे पास आजाओ। तब गीदड़ने कहा, मामा, तुम खाजाओगे, इसलिये मैं तो नहीं आता। तब शेर बोला कि जो खाये उसकी सन्तान मर जाये, इसलिये मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा, तुम आओ तो सही। अगर मैं तुम्हें दगा दूं तो मेरी सन्तान मर जायेगी। गीदड़ फिर भी नहीं आया। तब शेर उसके ऊपर झपटनेकेलिये उछला। उसका पेट पास पड़े हुए खम्भेमें धंस गया। तब गीदड़ हंसने लगगया। शेरने पूछा कि तुम हंसते क्यों हो? गीदड़ बोला, मामा, तेरे बापने किसीको दगा दी होगी, इसीलिये तू मर रहा

है। वह गीदड़ उसके छलको जानता था, इसलिये उसकी तो जान बचगई और वह शेर खुद ही मरने लगा।

सो भैया छल कपटका तो भयानक परिणाम होता ही है। छलसे कोई काम नहीं चल सकता। इसके फलसे दुःख पैदा होगा। माया और छलको हृदयसे निकालो। कपटको हृदयसे निकालो। थोड़ी सी मायाचारी भी बहुत अनर्थ करने वाली है। चाहे जितनी कठिनाईयां हों, परन्तु छल कपटको मनसे निकालदो। जिसके प्रति कभी कपट किया है उसके पास जाकर उससे ही निवेदन करदो कि मेरा तुमसे ऐसा कपट हुआ। ऐसा विचार कर माया कपटको अपने मनसे निकालकर आर्जवधर्मको अपने मनमें बसा लो। धर्मके बड़े-बड़े काम कपटरहित होकर हों तो बड़े फल प्राप्त हों।

पौराणिक वृत्त है कि एक मुनिराज एक गांवमें चार मासका कठिन उपवास करके विहार करगये। उसी समय दूसरे मुनिराज उस गांवमें आये। लोगोंने कहा कि ये कितने बड़े तपस्वी हैं, जो चार महीने का उपवास किया। इस बातसे इंकार नहीं किया और मौनसे उनकी बात सुनते रहे। उसका फल उनको अनन्त कपटका लगा। वहां मिथ्यात्व होगया, क्योंकि उन्होंने अपनी असली

स्थिति नहीं बताई। सबसे बड़ा कपट अपने आपको धोखा देना है। दूसरे को धोखा कोई नहीं दे सकता। जो धोखा देता है सो खुदको धोखा देता है। हम भले ही समझें कि हमने इनको धोखा देकर खूब उल्लू सीधा किया, परन्तु भैया जरा विचारोगे तो पता चलेगा कि तुमने उसे धोखा नहीं दिया परन्तु अपने आपको धोखा देकर अपना बहुत बड़ा अहित किया है। तुमने अपने स्वभावसे विपरीत कार्य किया। सबसे बड़ा धोखा तो अपनी ही आत्मा को धोखा देना है। आत्माका स्वभाव परम आनन्दमय चैतन्य मात्र स्वभाव है। मनुष्य कपटसे अपनी ही आत्मा के स्वभावको धोखा देता है। यह मिथ्यात्वका द्योतक है। न राग मेरा स्वभाव है न द्वेष मेरा स्वभाव है और जितने भी बाह्य पदार्थ हैं वह भी तो मेरे कुछ नहीं हैं उनसे भी तो मेरा कुछ सुधार बिगाड़ नहीं है फिर किसके लिये कपट और किसके लिये मायाचारी करना। ऐसा सोचकर ज्ञानी जीवसे कपट नहीं होता। व्यवहारमें भी सोचो तो वह कपटी तो अपनी ही आत्माको धोखा दे रहा है। आर्जव धर्म तो कपटके छूटने परही मिलेगा।

सन् ५७ के गदरके समय कुछ लुटेरे दिल्लीमें लूट मार करने लगे सारा शहर लुटने लगा। लूटते लूटते कुछ लुटेरे एक सेठ के मकान पर भी गये। सेठ ने सोचा कि

अब लुटेरे तो आवेंगे ही तब व्यर्थका संक्लेश क्यों करना कराना, उसने जितना भी धन उसके पास था सब लाकर अपने चौकमें फैला दिया और जब लुटेरे आये तो कहा कि लेजाओ। लुटेरोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसी बात तो हमने कहीं भी नहीं देखी। उन्होंने पूछा कि सेठजी आपने ऐसा क्यों किया ? तो सेठजीने कहा कि भाई, हमने सोचा कि क्यों आप लोगोंको ज्यादा तकलीफ दें व खुद क्लेश करें सो हमने आपके सामने सारा धन फैला दिया कि लेजाओ। लुटेरोंपर इसका बड़ा असर पड़ा और उन्होंने उस धनपर अपने चार आदमी और लगा दिये कि कोई उसका धन लूट न सके। उदार पुरुषोंकी विचित्र लीला होती है और सरलताके कारण वे प्रायः ठगाये भी नहीं जाते। सरल व्यवहारसे कठोरसे कठोर हृदय भी पिघल जाता है।

बनारसीदासजी के मकानमें एक चोर चोरी करने आया। उसने चोरीका सारा सामान बटोर लिया और उसकी पोटली बाँधली। वह पोटली इतनी भारी होगई कि उस चोरसे उठी नहीं। सेठजीने क्या किया कि आये और चोरसे कहा कि भाई, तुमसे यह उठती नहीं है, चलो मैं इसे उठाकर पहुंचा दूं, और यह कहकर वे उस पोटली को उठाकर साथ जाकर पहुंचा आये। चोरने वह लेजाकर

अपनी माँ को बताई। मां ने कहा कि आज इतनी बड़ी गठड़ी कहांसे मार लाया। चोर बोला कि मां माल मार लाया सो तो लाया, इसके मालिकने इस गठड़ीको उठाकर स्वयं ही यहांतक पहुंचादी, यह कितने आश्चर्यकी बात है। मां समझ गई और बोली अरे, वह बनारसीदास होगा। वह बड़ा धर्मात्मा है। उसका धन तुझे नहीं पचेगा, तेरी बड़ी दुर्गति होगी। जा, साराका सारा उसे वापस करके आ। चोरको वह धन वापस लाकर देदेना पड़ा। तो भैया, सरल पुरुषोंकी तो रक्षा करनेवाला उनका सरल या आर्जवपरिणाम ही होता है और इसके विपरीत जो ऐसा सोचते हैं कि देखो हमने उसे कैसा चकमा दिया कैसा छकाया तो ऐसे लोग तो प्रायः धोखा ही खाते हैं।

व्यवहारमें देखलो, जो अपनेको कुटिलता और कपट में लगाये रखता है, उसकी क्या दशा होती है और जो सरल रहता है उसका सब आदर करते हैं। मायावी पुरुष का पूजापाठ आदि धर्म करना सब निष्फल होता है। 'मुंहमें राम बगलमें छुरी' ऐसी दशा उनकी होती है फिर धर्म कहां। आर्जवधर्म बिना जपतप सब निरर्थक रहते हैं। आर्जवधर्म मोक्षमार्गके पन्थका सहयोगी है। मोक्षको जल्दी प्राप्त करना चाहते हो तो आर्जवधर्मको अपने साथ में रखो। इस धर्मके साथ रहनेसे मोक्ष पन्थपर बहुत

जल्दी पहुंच सकते हो, नहीं तो चतुर्गतिमें भटकते ही रहना पड़ेगा। जो दूसरोंसे कपट करता है उसे स्वयं लज्जित होना पड़ता है। एक मज़ाकिया आदमी रास्तेमें कहीं जारहा था। सामनेसे एक स्त्री कमरपर घड़ा रखे हुए और उसको हाथसे संभालेहुए पनघटसे आरहीथी। उसने मजाकसे, कपटसे, छलसे उस स्त्रीसे कहा कि -

किं मां निरीक्षसि घटेन कटस्थितेन।
वस्त्रेण चारुपरिमीलित लोचनेन॥
अन्यं प्रपश्य पुरुषं तव कर्मयोग्यं।
नाहं घटाङ्कितनुं प्रमदां स्पृशामि॥

अर्थात् अपनी कमरपर घड़ा रखेहुए हे ब्राह्मणी, तू मुझे क्या देखती है? इन अपने लोचनोंसे मुझको तू क्या देखती है? अपने कामके योग्य किसी दूसरे पुरुषको देख। जिसके शरीरपर घट रखा हो उसे मैं छूता भी नहीं हूँ। अब वह स्त्री जवाब देती कि है—

सत्यं ब्रवीमि मकरध्वजबाणपीड।
नाहं त्वदर्थमनसा परिचिन्तयामि॥
दासोऽद्य मे विघटितस्तव तुल्यरूपी।
सो वा भवेन्न भवेदिति मे वितर्कः॥

अर्थात् कामदेवके व्यसनसे पीडित हे पुरुष! तू बिल्कुल सत्य बोल रहा है। मगर मैं मनसे तेरे लिये नहीं विचार

रही। परन्तु मेरा नौकर जो तेरीही जैसी शक्लका था, वह आज कहीं चला गया। मैं यह देखरही थी कि वह नौकर तू ही है या और है। इसप्रकार सेरके लिये सवा सेर मिल गया। इसलिये वह मजाकिया शर्मके मारे लज्जित होकर चलागया। कपटीको तो भैया ऐसा ही नीचा देखना पड़ता है। पग पग पर निरादर सहन करना पड़ता है।

कपटसे कोई बात कहो तो सोचते रहना पड़ता है कि तुरन्त वहांसे जवाब न मिल जाये, नहीं तो लज्जित होना पड़ेगा। इस लज्जित न होनेके लिये कपटको त्यागो हमारे गुरूजी (पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी) कहा करते थे कि हम तो सबकी बात जानते हैं कि किसके मनमें क्या भाव है, परन्तु कहते इसलिये नहीं कि क्यों उसका जी दुखावें। इसलिये यह समझना चाहिये कि कहीं ऐसा नहीं है कि कोई मेरे कपटका कहीं पता नहीं लगा सकता। कपटको सब पहिचान लेते हैं, हाँ सज्जन उसकी उपेक्षा करजाते हैं। आप कपट करके यह न सोचें कि भाई हमारा काम तो निकल जाता है किसी को हमारे कपटका पता भी नहीं चलता परन्तु ऐसा नहीं है। पता तो अवश्य चलता है परन्तु सज्जन पुरुष उस कपटको प्रगट करके आपका दिल नहीं दुखाना चाहते।

कुटिल परिणामोंका त्याग करनेमें ही आर्जवधर्म प्रगट हो सकता है। कुटिल परिणामोंका त्याग करना ही आर्जवधर्म है। आत्मामें जो भी भाव प्रगट होते हैं, जो सम्यक्‌दर्शन के परिणाम हैं वह सब आर्जवधर्म से प्रगट होते हैं। और भैया, धर्म ही और क्या है, अपने स्वभावमें आजाना और विभाव परिणाम हटजाना, यही तो धर्म है। कपटके त्याग करनेपर आत्मा स्वयं आर्जवरूप रहजाती है। बस, जहां विभाव हटा धर्म स्वयंमेव होगया। आवश्यकता तो विभाव हटानेकी है। इसलिये कपट मत करो।

एक गीदड़की कथा है कि उसको कहींसे शेरकी खाल मिलगई और एक काग़ज़का टुकड़ा कहींसे मिलगया। वह उस खालको पहिनकर जंगलके सब जानवरोंके पास गया और उनसे वह काग़ज़का टुकड़ा दिखाते हुए कहने लगा कि मुझे भगवानके यहांका यह परवाना मिला है कि तुम आजसे जंगलके राजा होगये। इसलिये आजसे तुम मेरी आज्ञामें चला करो। सब उसकी आज्ञामें रहने लगे। वह बड़ा सम्मान पाने लगा। आषाढ़के महीनेमें जब पानी बरसने लगा तो उसकी जातिके सब गीदड़ 'हुआं हुआं' करने लगे। अपनी बोली होनेके कारण वह भी 'हुआं हुआं' चिल्लाने लगा। शेरने उसे हुआं हुआं बोलते हुए सुन लिया और उसका कपट समझ गया और उसे तुरन्त

मार दिया। इसी तरह जो आदमी कपट करता है उसका कपट अधिक दिन टिक नहीं सकता। जो चीज़ यथार्थ नहीं होगी वह कभी नहीं टिकेगी। सदा टिकनेवाली चीज तो कपटरहित रहनी ही है। कपटसे अपनी शान बढ़ाने वाला जीवनमें धोखा खाता है। कपटसे तो बड़ी २ वेश्यायें भी धनी बनजाती हैं। उनके धर्म नहीं होता। कपटसे कमाया हुआ धन न दानमें और न भोगमें लग सकता है। न्यायसे कमाया धन ही धर्ममें लग सकता है।

एक वेश्या थी, उसने बहुत धन कमाया। अब उसने सोचा कि पाप तो मैंने बहुत किये, चलो अब इस पापसे कमाये हुए धनको दान करके आवें। दान करनेकेलिये उसने गंगाके किनारे जानेकी विचारी। एक ठगने देख लिया और उसका विचार भी किसी तरह जान गया। वह गंगाजीके तट पर बदनमें भस्म रमाकर समाधिमें बैठ गया। वेश्या वहां जाकर देखने लगी कि कौनसे महात्मा उसके दानके योग्य हैं ताकि बड़े अच्छे महात्माको दान देदूं। वही ठग महात्मा उसे पसन्द आये। बहुत देर हाथ जोड़े खड़े रहनेके बाद महात्माजीने अपनी समाधि धीरे २ आंख खोलकर भंग की और वेश्यासे पूछा कि तुम कौन हो? तब उसने बताया कि मैं वेश्या हूँ और दान देने आई हूँ। वे बोले कि तू वेश्या होकर हम इतने

बड़े महात्मासे बात करती है ? इसका तो बड़ा प्रायश्चित होता है। तू क्या दान करती है ? महाराज ! मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान करना चाहती हूँ। महाराजने स्वीकार किया। उसने सारी सम्पत्ति दी और खीर खांडके भोजन कराये। ठग महाजनने उसकी सम्पत्ति लेकर कई तरहसे संकल्प कराये फिर अन्तमें एक दोहा पढ़कर आशीर्वाद दिया :—

गंगाजी के घाट पर खाई खीर अरु खांड।
योंका धन यों ही गया तुम वेश्या हम भांड ॥

भैया, यह बात सयुक्तिक है कि कपटसे कमाया धन, दान धर्म आदिमें भी नहीं लग सकता। उसे तो ठग ही ठग लेजायेंगे। इसलिये कपटको मनसे निकालो। अपनी श्रद्धा करो। अपने चैतन्यस्वभावपर विश्वास करो। अपने भाइयोंके साथ, मां बापोंके साथ, छोटे बड़े सबके साथ सरलताका व्यवहार रखो। कपट करनेकी क्या आवश्यकता है ? कपटभावको अपने मनसे बिल्कुल निकाल कर शुद्ध आर्जवधर्मको धारण करना चाहिये।

निश्चयसे आर्जवका क्या स्वरूप है ? जगतके बाह्य पदार्थों आदिसे राग, द्वेप आदि व्यवहारके परिणामसे जो नहीं रहता है, ऐसे अनादि, अनन्त, अहेतुक, ज्ञान-

स्वभावकी आराधनासे जो अपने आपके अनुभवस्वरूप आये ऐसे अनुभवस्वरूप परमात्माके अवलोकनको ही वास्तविक सरलता कहते हैं और यही आर्जवका वास्तविक स्वरूप है। बाह्य लक्षसे कुटिलता उत्पन्न होती है। जहाँ बाह्यलक्ष ही नहीं है, वहां कुटिलताकी आवश्यकता क्या है ? किसी वस्तुसे राग हुआ, किसीसे द्वेप हुआ, किसी को इष्ट समझा, किसीको अनिष्ट समझा तभी तो कपटका परिणाम हुआ। अपने स्वरूपको समझो, मैं तो एक शुद्ध, निर्विकार, निरंजन, ज्ञानस्वभाव ही है जिसका, ऐसा आत्मा हूं। इसीप्रकारकी श्रद्धा करो, कुटिलपरिणाम रहेगा ही नहीं। सरलता अवश्य आ ही जावेगी। जो माया करता तिर्यञ्चयोनिमें जाता है 'मायातिर्यगोनिस्य' ऐसी २ दुःखमय पर्यायें इस मायाके परिणामसे हुआ करती हैं जिनको सुनकर भी रोंगटे खड़े होजाते हैं। सरल और सत्य व्यवहार प्रत्येक मनुष्यसे करना चाहिए। कपट किसीसे नहीं करना चाहिए। वास्तविक आर्जवधर्म तो यही है कि सर्वजगत्के बाह्य पदार्थोंका लक्ष त्यागना और अपने आपमें पापकी प्रवृत्ति नहीं करना। बात वह बोलो जिससे कपट करनेकी इच्छा ही नहीं रहे और फिर किसी प्राणीसे क्षमा न मांगना पड़े, अर्थात् प्रत्येक प्राणीके हितकी ही बात सोचना। ऐसा आर्जवधर्मका वास्तविकस्वरूप है। कपटी

पुरुष यह सोचता है कि मेरा कपट प्रकट ही नहीं होसकता परन्तु कपटीका दिल स्वयं निर्बल होता है जिससे कपट प्रकट हो ही जाता है। प्रच्छन्न पाप भी कभी छुपता नहीं है। लोकमें भी कहते हैं कि कुयेंमें किया हुआ भी पाप प्रगट हुए बिना नहीं रहता।

एक साधू था, उसके साथ एक आदमी कहीं जारहा था। वर्षाका मौसम था। रास्तेमें एक जंगलमें साधूने उस आदमीको कपटसे मारना चाहा। उसने कहा देख तू मुझे कपटसे मारता है, एक दिन ज़रूर तेरा यह कपट प्रगट होजायेगा। साधूने हंसकर कहा कि मुझे यहां पाप करते हुए कौन देखता है? तब उसने कहा कि ये पानीके बबूले जो उठ रहे हैं वे तुझे देख रहे हैं। तुम देखोगे कि थोड़ी देरमें तुम्हारे नीचेकी घास उठकर तुम्हारे ऊपर अभियोग चलायेगी। पत्थर—निर्जीव पत्थर और हरेभरे वृक्षोंको ज़बान लग जावेगी। वे तुम्हारे विरुद्ध आवाज़ उठायेंगे। तब साधूने हँसकर कहा कि ये मेरा क्या कर सकते हैं और उसे मार दिया। पुलिसको उसकी खबर लगी और हत्यारेकी खोज सी० आई० डी० द्वारा की जाने लगी। पुलिसको उस साधू पर ही शक होगया। तब सी० आई० डी० का आदमी उस साधूके साथ होकर उसका परमभक्त शिष्य बनगया। कुछ दिनों बाद उसने

साधुका पूर्णरूपसे विश्वास प्राप्त करलिया। साधु हर तरह की अपनी बात उस शिष्यसे कहता हुआ नहीं हिचकिचाता था, इतना विश्वासपात्र-शिष्य वह बन गया।

एक वर्ष बाद फिर वर्षाका मौसम आया। पानीके बबूले उठरहे थे, उन्हें देखकर साधुको हंसी आगई। उस हंसीको देखकर शिष्यने पूछा कि आपको यह हंसी क्यों आई, तो कहने लगा कि यों ही आगई। तब शिष्य बोला कि श्रीमान् मैं आपका अभिन्न अङ्ग हूं। आपको यह हंसनेकी बात तो मुझे बतानी ही होगी। उसकी बातोंमें आकर साधुने सारी कथा सुनादी। सी० आई० डी० का वह आदमी इस बातको जाननेकी तलाशमें तो शिष्य बना ही था। वह इसतरह सारी बात जान गया। उसने पुलिस को खबर करदी कि हम दोनों उस तरफ़ आयें तो गिरफ्तार करलेना। इसप्रकार जब वे उधरसे गये तो साधु गिरफ्तार कर लिया गया। इसतरह कपट जो है वह कभी भी छिपता नहीं। वह कभी न कभी प्रगट हो ही जाता है।

लोग कहते हैं कि आजकल कपट बिना गुज़ारा ही नहीं होता, ऐसा सोचना भ्रम है। अबभी कितने ही ऐसे ऐसे व्यापारी देखे गये हैं जो निश्चय कर लेते हैं कि हमको एक रुपये पर केवल इतना सा ही नफ़ा लेना है। वह चाहे आपसे झूठ बोलते रहें फिर भी यदि कोई

व्यक्ति उस सीमासे अधिक देवे तो उसे वे लौटा देते हैं। आनन्द तो इसमें है जो थोड़ा भी असत्य आदि का बोझ भी न लादा जाय। अन्तरङ्गकी बात जो है वह साफ़ तौर पर बयान कर देना चाहिये ताकि सब लोग तुम्हारा विश्वास करें। आत्माके स्वभावको देखो। यह आत्मा अकेला ही जायेगा। कोई कपट वपट हमारा साथ नहीं देगा। कपटका त्याग करो, आर्जवधर्मकी भावना करो, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। निरन्तर रागद्वेषादि, औपाधिक कुटिल भावोंसे रहित सरल ज्ञानमय स्वभावके दर्शन करते रहो।

: चार :

उत्तम शौच धर्म

आज शौच धर्मका दिन है। शौच शुचिके भाव अर्थात् पवित्रताको कहते हैं। पवित्रता किसे कहते हैं? किसी वस्तुमें किसी दूसरी वस्तुका समागम हो तो उस वस्तुको अपवित्र कहते हैं और उस वस्तुमें से बाह्य अव-स्थाका समागम निकाल लिया जाये तो उसको पवित्र कहते हैं। विजातीय वस्तुके मेलसे अपवित्रता आजाती है

और वह हटजानेसे वस्तु पवित्र होजाती है। इसीतरह यह आत्मा द्रव्यकर्म और नोकर्मका संयोग होनेके कारण जो यह उसकी परअवस्था है अर्थात् उस द्रव्यकर्मके उदय का निमित्त पाकर जो आत्मामें राग, द्वेष आदि विभाव पैदा होते हैं उनसे आत्मामें मलीनता होती है। उस विभावसे हटकर आत्मा विशुद्ध ज्ञानमात्र होजाये अर्थात् अपने स्वभावमें आजाये उसको कहते हैं पवित्रता। जब तक आत्माके साथ विभाव-भाव लगे रहते हैं अर्थात् अपवित्र रहती है तब तक आत्मा कर्मोंसे बद्ध होनेके कारण संसार चक्रमें घूम घूमकर महान् क्लेशित होता रहता है। आत्माकी शान्ति तो उसकी पवित्रतामें है। किन्तु कितने ही आदमी इस रहस्यको न जानकर केवल शरीरकी पवित्रताको ही धर्म कहते हैं।

अच्छा भाई इस शरीरको ही देखो कितना अपवित्र है ? खून, पीव, राध आदिसे भरा पड़ा है। नव द्वारोंसे सदा मल झरता रहता है। इसके अतिरिक्त जितने भी रोम हैं सबसे पसीना बहता रहता है। बहुत ज्यादा मल मलकर नहानेपर भी यह पवित्र नहीं होता और मान भी लिया जाये कि साबुनआदिके प्रयोगसे क्षण भरके लिये शरीर भी पवित्र होजाये परन्तु शरीरके साफ़ होनेसे आत्मा की पवित्रता नहीं आती। मलके भरे घड़ेको ऊपरसे शुद्ध

करनेसे जैसे वह घड़ा शुद्ध नहीं होता, उसके अन्दरकी मलीनता तो उसमें रहती ही है, उसी प्रकार शरीरको पवित्र करनेसे आत्मामें पवित्रता नहीं आती। जैसे मैले कपड़े पर साबुन लगानेसे कपड़ेका मैल हटजाता है और कपड़ा साफ़ होजाता है इसीप्रकार आत्मामें जो द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्मरूपी मैल विद्यमान है उसको सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, चारित्रसे हटानेपर आत्मा पवित्र होजाता है। दर्शन ज्ञान चारित्रका जहां एकत्व है ऐसे चैतन्यभावकी आराधना ही कर्म-मलका हटाना है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तकभाव है। वह एक ऐसी बुहारी है कि यह आत्माको बुहारकर साफ़ सुथरा करदेता है। राग, द्वेष आत्मासे निकल जाते हैं, आत्मा वीतरागी होजाती है और वीतरागता हुई वहीं आत्मामें पवित्रता आई और वहीं धर्म हुआ। शरीरके साफ़ करनेसे आत्माको पवित्रता अपवित्रताका प्रश्न ही नहीं उठता। शरीर तो आत्माके स्वरूपसे पृथक है उसपर विचार करना व्यर्थ है। आत्मा तो सम्यक्दर्शनसे ही पवित्र होसकती है।

उत्तम शौच धर्म यह बतलाता है कि बाह्य वस्तुओंमें ममत्व परिणाम मत करो। बाह्य ठाठबाटमें परिणति रखने को ही अपवित्रता कहते हैं। मैं तो निर्मलज्ञान स्वभावसे पूर्ण हूँ यह तो स्वयं शुचि है, इस श्रद्धाके बलपर ज्ञानी

आत्माके रागद्वेष आदि भाव नहीं आते। इसको उत्तम शौचधर्म कहते हैं। यह दिखनेवाले ठाठबाटको मैं नहीं करता यह परपदार्थ हैं, ये पुण्यरूप परद्रव्यके निमित्तसे अपनी सत्तासे स्वयं होते हैं

पुण्यके उदय बिना कोई कितना ही पुरुषार्थ करले, कहीं कुछ नहीं होसकता। पुण्यके ही ठाठबाट ये सब हैं। इनसे मेरा कोई लाभ नहीं है। मेरा धर्म है इस चैतन्य-स्वभावको स्थिर रखना। यह चैतन्यस्वभावी आत्मा ही सहज सुखका देनेवाला है। सो भैय्या ! यदि कोई पुरुपार्थ करना है तो मोक्षप्राप्तिका पुरुपार्थ करना है, बाह्य-सामग्री को इकट्ठा करनेका पुरुपार्थ करना आत्माको अपवित्र बनाना है। बाहरी वस्तु पुरुपार्थसे नहीं मिलती, ये तो कर्मोदयका निमित्त पाकर व उद्योगका निमित्त पाकर स्वयं सत्तासे उपस्थित होती है। यह आत्मा बाह्यके पुरुपार्थमें नहीं लग सकता। बाह्यका यह आत्मा कुछ भी तो नहीं कर सकता। जिसने समस्त जगत्से भिन्न ज्ञानस्वभावी निज आत्माको पहिचाना, शौचधर्म उसीके होता है। पर्यायमें बुद्धि हो, श्रद्धा हो कि मैं मनुष्य हूँ, देव हूँ, धनी हूँ, कुटुम्बी हूं इत्यादि तो शौचधर्म पैदा नहीं हो सकता। शौचधर्म वहां प्रगट होता जहां है यह समझलिया जाय कि मेरा तो मात्र चैतन्यस्वभाव है, यह बाह्यपदार्थ

मेरे कुछ नहीं हैं, लोभकषायका मैं जड़से त्याग करता हूं। सब बाह्यपदार्थों से भिन्न मेरा धर्म है, मैं अपने ही ज्ञानस्वभावमें ही लीन रहूं, यही मेरी भावना रहती है। ऐसा सोचनेवाले आदमीके ही शौचधर्म प्रगट होता है। ज्ञानी जीवके लोभ नहीं होता परपदार्थोंसे उपेक्षा होती है, स्वको ही अपना समझता है तभी तो उसके पवित्रता या शौचधर्म होता है। जिसको इस ज्ञानस्वभावका ज्ञान नहीं, अपने एकाकीपनपर जिनको विश्वास नहीं, उसके अन्तरमें शौचधर्म नहीं आसकता। मैं आते समय कुछ नहीं लाया और न जाते समय कुछ अपने साथ लेजाऊंगा, बीच ही में पाया और बीचही में यह सब नष्ट होजायगा, मैं तो जैसा आया वैसाही जाऊंगा, जिनको इस बातका विश्वास नहीं है उनकेलिए बाह्यअवस्था ही सबकुछ बनी रहती है। बाह्यके ठाठमें ही वे मस्त रहते हैं। परन्तु इस शरीरका एक परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है और जब ममत्वभाव भी मेरा नहीं है, फिर ममताके विषयभूत बाह्यअर्थ मेरा क्या होगा। ज्ञानीजीव तो विश्वकी सम्पदाको भी तृणके समान निस्सार समझता है —

"चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सारिखे भोग।
काक बीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग॥"

आत्माका यह शौचधर्म तबतक प्रगट नहीं होसकता जबतक आत्माके स्वभावको न जानलो। यह तो सोचो कि क्या मैं संसारमें अखाड़ा जमाने आगया? क्या मैं यहां सदा रहूँगा? जिसको ये मुझे समझते हैं उस लाश को ले माता, पिता, भाई, बन्धु, सगे सम्बन्धी, पड़ोसी, ये जितने भी हैं, एक न एक दिन तुरन्त उठाकर फूकेंगे। फूंको, वह मैं नहीं हूं, सबसे भिन्न ज्ञायकभाव मैं हूँ, फिर मैं क्यों किसीसे प्रीति करूं, क्यों उनकेलिए न्यायअन्याय से धनोपार्जन करके पापकी पोट अपने सिरपर धरूं, क्यों उनमें ममत्वबुद्धि करके अपनेको नरक-निगोदका पात्र बनाऊं? सब ओरसे अपनेको हटाओ एक ज्ञानस्वभावको देखो। इस जगत्के बन्धनोंका त्याग करनेपर उत्तम शौच धर्म प्रगट होगा। बाह्यकी प्रवृत्तिसे आत्मामें धर्मका विकास नहीं होता। आत्माकी ज्ञानपरिणतिसे ही आत्मामें धर्मका विकास होता है। परपदार्थ से ही तो मुझे सुख मिलता है, ये स्त्री-पुत्र मुझे सुखी करते हैं, धन मेरे सुख की वृद्धि करता है यह मानना गलत है। बाह्यपदार्थ हमारे कार्योंके निमित्त अवश्य रहते हैं, परन्तु बाह्यकी प्रवृत्तिसे वह काम नहीं होता। वह तो स्वयंके उपादानसे ही होता है। शौचधर्म वहां ही प्रगट होता है जहां बाह्यसे दूर केवल आत्माके स्वरूपका लक्ष्य होता है।

यह शौचधर्म धर्मोंका एक अंग है। यह दसके दस धर्म ऐसे हैं कि एक धर्मका पूरा पालन होवे तो उसमें ९ धर्मोंको पालना स्वयमेव गर्भित है। जिसने परवस्तुमें अपने आपकी बुद्धि नहीं की, शुद्ध ज्ञाता दृष्टापन ही तो मेरा स्वभाव है, यही तीनों कालतक मेरा स्वरूप रहेगा। मेरे कहां क्रोध होगा, मान होगा, कषाय होगा, अहंकार होगा, ऐसा सोचनेसे सारेके सारे धर्म अपने आप आत्मामें गर्भित होजाते हैं। यह शौचधर्म शरीरसे भिन्न है। यह आत्मा का स्वभाव है। शौचधर्मको शरीरका धर्म समझना मूर्खता है। अंतरंगमें आत्माका निर्ममत्व परिणाम ही आत्माको शुद्ध करता है। परपदार्थ क्षणिक हैं अपने आप चले जायेंगे, आप आयेंगे। हमसे भिन्न हैं, हमारे नहीं हैं यहां तक कि शरीरको भी तो कहदिया जाता है कि मेरा शरीर, तो मैं तो कोई वस्तु ही निराला हूं। उस 'मैं' का स्वरूप इन परपदार्थोंसे बिल्कुल ही विपरीत है। बस इतना ही तो धोखा है कि हमने उनको अपना मान रखा है। इतनीसी बात मानलो कि कोई पदार्थ मेरे नहीं हैं (और वास्तवमें हैं भी नहीं) तो सब सुख तुम्हारे पास आजायेगा। परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। आत्माका पवित्रभाव जो मेरा है वह ही पवित्र शौचधर्मके उदयमें सहायक होगा। आत्माके स्वभावकी दृष्टि रखकर ही अशुद्ध अवस्थामें भी

यही विचार रखना कि यह आत्मा त्रैकालिक ज्ञान स्व-भाववाला है। यह दृष्टि ही शौच धर्मका विकास करने वाली है। यह जगतमें अपने आपके प्रकाशका विस्तार करनेवाली है।

मनको पवित्र रखनेसे यह उत्तम शौच धर्म प्रगट होता है। दूसरेके प्रति विरोधका ध्यान लानेमें यह शौच धर्म नहीं-आसकता। परपदार्थमें ध्यान रखनेसे यह शौच धर्म प्रगट नहीं होसकता। एक आदमी सभी विद्याओंमें पारगामी होकर अपने घर आया तो उसकी स्त्रीने उससे एक प्रश्न पूछा कि बताओ पापका बाप क्या है? वह उत्तर नहीं देसका और कहने लगा कि मेरे गुरूजी ने मुझे सब विद्यायें सिखाईं पर यह बात नहीं बताई। अतः मैं बनारस वापस जाता हूं और गुरूजी से इसका उत्तर पूछ-कर आता हूँ। वह पैदल ही बनारस, जहां कि शिक्षा पाई थी, चल दिये। रास्तेमें रात होगई और वे एक शहरके सबसे आखीरके मकानके बाहर वाले चबूतरे पर रात बितानेकेलिये सोगये। सुबह हुई तो एक स्त्री उस मकान में से आई और उसने पूछा कि आप कहां जारहे हैं? उसने उत्तर दिया कि वैसे तो हमारे गुरूजी ने हमको सब विद्याओंमें पारंगत करा दिया है, परन्तु उन्होंने हमको एक बात नहीं बताई और वह बात हमसे हमारी

स्त्रीने पूछली। हम उस बातका उत्तर लेने अपने गुरूजी के पास जारहे हैं। उस औरतने पूछा कि कौनसा प्रश्न आपकी स्त्रीने पूछा था? तो बोले कि पापका बाप क्याहै?

"अच्छा तो महाराज आप आज यहां ही ठहरिये, आपके प्रश्नका उत्तर मिल जायेगा।" उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? तो वह बोली कि मैं तो एक वेश्या हूं। तो वह बोले अरे, मुझे तुम यहां ठहरनेके लिये कहती हो, तुम्हारे मकानके बाहर सोनेसे ही मैं तो पापका भागी बनगया, अब मुझे उस पापका प्रायश्चित करना पड़ेगा। तो वह बोली महाराज यह लीजिये २० अशर्फियां और जो आपको पाप लगा है उसका प्रायश्चित करलेना और मेरे यहां ठहर जाइये ताकि आपके ठहरनेसे हमारी यह कुटी पवित्र होजाय। २० अशर्फियोंके नामपर ठहरनेको राजी होगये। तब वेश्या बोली कि महाराज अब आप यहां ही भोजन भी कीजिये और आपको कुछ प्रायश्चित करना पड़े तो उसके लिये ये २० अशर्फियां और ले लीजिये। भोजनके लिये भी राजी होगये, परन्तु बोले कि भोजन मैं अपने हाथोंसे ही बनाऊंगा। वेश्या तैयार हो गई। फिर वेश्या बोली कि महाराज मेरी इच्छा है कि आज तो मैं आपको अपने हाथोंसे बनाकर ही भोजन खिलाऊं। जब वह कुछ आनाकानी करने लगे तो वेश्या

बोली कि महाराज इसके लिये यदि आपको प्रायश्चित लेना पड़े तो ये २० अशर्फियां और उपस्थित हैं। वह खाना खाने लगे। फिर वह वेश्या बोली कि महाराज एक कौर मेरे हाथसे भी खालीजिये। तो बोले कि तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं होगया है। तुम्हारे यहां ठहरनेसे ही मुझे इतना पाप लग गया, अब तुम्हारे हाथसे एक कौर लेकर क्या और पापका भागी बनूंगा? तब वह वेश्या कहने लगी कि यदि मैं खराब भी हूँ तो मेरे हाथसे भोजन करानेसे मेरा उद्धार तो होजायेगा। यदि आपको इस पाप केलिये भी प्रायश्चित करना पड़े तो यह और लीजिये २० अशर्फियां। जैसे हमारे हाथ वैसे ही आपके हाथ हैं। बल्कि आपके कड़े कड़े हाथ हैं और हमारे कोमल कोमल हाथ हैं। हमारेमें यह विशेषता ही है। मेरे हाथसे खानेसे मेरा उद्धार होजायेगा। इसप्रकार कहती हुई उसने उनको राजी करलिया। २०, २० अशर्फियोंका लोभ देकर जो चाहा सो काम करा लिया।

जब वह उस वेश्याके हाथसे कौर खानेको राजी हो गया तो वेश्याने उनके मुंहमें कौर न डालकर उनके मुंहपर दो थप्पड़ लगा दिये कि गुरूजी से जो सबक लेने जारहे थे वह तो तुम्हारे सामने ही है। अरे ये लोभ ही तो पापका बाप है। कहा भी है 'लोभ पापका बाप बखानो'

तब वह बोले कि मैं समझ गया। सब कुछ अशर्फियां वहीं छोड़, वे सीधे घरकी ओर भागे और स्त्रीको जवाब दिया।

सो भैया! यह लोभ ही तो आत्मामें अपवित्रता पैदा करता है। आत्मामें अशुचिता परद्रव्यके मोहसे आती है और देखो भैया है तो यही मोही आत्मा अपवित्र और कहते हैं कि शरीर अपवित्र है। जब यह आत्मा इस शरीरमें नहीं था तो यह परमाणुपुञ्ज पवित्र था, किसी भी तरहकी अपवित्रता इसके किसी भी अंश अथवा परमाणुमें नहीं थी। इस आत्माने ही उसमें प्रवेश करके उसे अपवित्र बनाया है। इन आहारवर्गणावोंको ग्रहणकर रुधिरादि रूप बनाया तब पुद्गल अपवित्र हुआ कि आत्मा? यह आत्मा ही यहां अपवित्र है। अतः हे आत्मन्, जब तुम अपवित्र हो व तेरे कारणसे ही यह शरीर अपवित्र बना तब परकी अपवित्रताके गीत न गाकर खुदकी जो अपवित्रता है उसे देखो और ज्ञानदृष्टिसे दूर करो, पर-विकल्प त्यागो। यह देहवर्ग तो बहुत पवित्र रूपसे चलरहा था, तेरे आनेसे पहले उसमें यह अपवित्रता तो नहीं थी, तेरे धारण करनेके बाद ही तो यह अपवित्र हुआ है। इसप्रकार अपनी अपवित्रताको निरखो और बाह्य पदार्थोंसे मोह हटाकर आत्माकी शुद्धिका उपाय करो तो आत्माको शान्ति मिलेगी।

एक शिष्य और एक गुरु था। शिष्यने गुरुको कहा कि हम तीर्थयात्राको जायेंगे। गुरुने कहा कि तीर्थ जानेसे क्या होगा? अपनी आत्माकी शुद्धिमें लगो वही तीर्थ है। शिष्य नहीं माना। वह गया। रास्तेमें एक बारात आरही थी। उसने लोगोंसे पूछा कि यह क्या है? तो लोगोंने कहा कि बारात जारही है। वह बेचारा जानता नहीं था कि बारात किसे कहते हैं। उसने फिर पूछा कि बारातमें क्या होता है? उत्तर मिला कि बारातमें दूल्हा होता है, उसका एक लड़कीसे विवाह होता है, विवाहके बाद लड़के लड़की होते हैं, फिर गृहस्थी पलती है। यह बात सुनकर वह आगे चलता गया। रास्तेमें एक कुआ था जो ऊपरसे सपाट था। वह थका हुआ था अतः कुएंपर सोगया। नीदमें उसको एक स्वप्न आया कि उसकी शादी एक अच्छी लड़कीसे हुई। कुछ दिनों बाद उसके बच्चा पैदा हुआ। तब वह और उसकी पत्नी सोरहे थे, बीचमें बच्चा सोरहा था। पत्नी पतिसे कहरही थी कि थोड़े सरक जाओ बच्चा तकलीफ़ पारहा है। वह सचमुच सरकगया। पत्नी फिर कहती कि थोड़ा और सरक जाओ। फिर वह और सरक गया और वह सरकनेके फलस्वरूप कुयेंमें गिरपड़ा। तब वह सोचने लगा कि हाय, यह स्वप्न ही स्वप्न तो था, इस स्वप्नमें भी मैं यह चीज देखकर कुयेंमें गिरपड़ा।

वह कुयेंमें यह सोच ही रहा था कि एक जमींदार आया और उसने पानी खींचनेके लिए कुयें में लोटा लटकाया। जब लोटा नीचे पहुंच गया तो उस शिष्यने उसे पकड़लिया और ज़ोरसे चिल्लाया कि मैं भूतप्रेत नहीं हूँ, आदमी हूँ, कुयेंमें गिरपड़ा हूँ, मुझे जल्दीसे निकालो। ज़मींदारने उसे निकलवा दिया, फिर ज़मींदारने उससे पूछा कि भाई, तुम कौन हो और कुयेंमें कैसे गिर गये ? तो शिष्यने सोचा कि इन्होंने मेरे प्राण बचाये हैं अतः पहले इनका परिचय ही मुझे लेना चाहिए, अपना परिचय तो मैं बादमें बतलाऊंगा। वह ज़मींदारसे कहता है कि आपने मेरे प्राण बचाये हैं, इसलिए पहले कृपया आप ही अपना परिचय दीजिये। तब वह ज़मींदार बोला कि यहां से ४ कोस दूर एक गांव है, मैं उस गांवका ज़मींदार हूं। स्त्री पुत्र प्रपौत्र आदि ५० आदमियोंका परिवार है, अनेक जागीर हैं आदि कहते हुए उसने अपने सारे ठाठबाट बतलाये। तब वह शिष्य उसके सारे शरीरको इसतरह निरखने लगा जैसे कोई डाक्टर निरीक्षण कररहा हो।

ज़मींदारने पूछा कि भाई, तुम क्या देख रहे हो ? तो वह बोला कि मैं यह देख रहा हूं कि मैं तो स्वप्नकी गृहस्थीमें रहकर ही कुयेंमें गिर पड़ा और तुम सचमुचकी गृहस्थीमें रहकर जीवित कैसे हो ? सो सचमुच भैया !

जहां नाना विकल्प लग रहे हों तो वह कोई जीवन है? इसलिये विषयकषायोंमें जिसका चित्त है, परके ही लक्ष्यमें सदा रहता है, परपदार्थोंमें विकल्प करता है, वह मोही बनकर दुर्गतिमें पड़ता है। अपने आपका उद्धार करनेके लिये कुछ सोचिये। जितने भी द्रव्य जगतके हैं सब स्वतंत्र हैं। यह आत्मतत्व सदा रहनेवाला है। शरीर छोड़कर भी चलाजाता है, आत्मतत्व फिर भी सदा रहता है। यह मनुष्यमें, पशुमें, पक्षीमें, किसी न किसी रूपसे अवश्य रहता है। जो ये देख रहे हो कि अमुक मरा, अमुक पैदा हुआ इससे इसका अनुमान लगाया जासकता है।

पाप पुण्यके भावसे यह अवस्थायें मिलती हैं। इस लिये अपनी जिम्मेदारी आप समझकर अपने आप पर दया कीजिये और एक अपनेही सत्यस्वरूपको समझिये। शास्त्र (ज्ञान) रूपी धनकी वृद्धि करनेसे ही ये उत्तम शौच धर्म रहता है। शौचधर्म उसी मनुष्यके होता है जिसके लोभकषायका त्याग होता है। ज्ञानदर्शन स्वभावका महात्म्य जहां रहे, उसके उत्तम शौचधर्म होता है। वर्तमानमें भी यहसब बाह्यपदार्थ हमारा साथ नहींदेते तो आगे कहां से साथ देंगे? ज़रा हम बीमार पड़जायें, दर्दकेमारे चिल्ला रहे हैं। स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, सेना, मन्त्री, नौकर चाकर आदि सभी सेवा करनेके लिये उपस्थित हैं; परन्तु क्या

मजाल कि ज़राभी कोई उस दर्दको बांटसके। वह दर्द तो स्वयं ही सहन करनाहोगा। भाई मरनेपर भी देखलो सब यहीं पड़े रहते हैं और यह आत्माराम अकेले ही चला जाता और स्वर्ग या नर्क में पहुंचकर सुखी व दुखी भी अकेलाही होता है कोईभी उसमें शरीक नहीं होता। अतः इनसे अपनी परिणति दूर करो अन्यथा ये विभाव परिणतियां खुदमें बसकर खुदका विघात करती रहेंगी।

एक भिखारी था उसको कहींसे २० अशर्फियां मिल गईं। तब वह सोचनेलगा कि ऐसा सुरक्षित स्थान कौन सा लाऊं जहाँ इनको बचाकर रखसकूं। बहुत सोचनेके बाद उसके दिमागमें आया कि इन्हें अपने पेटमें ही रखना चाहिये। इससे अधिक सुरक्षित स्थान और कोई नहीं हो सकता और यह सोचकर वह उन्हें खागया। फलस्वरूप उसका पेट खराब होगया और वह उनको न पचा सकनेके कारण मरगया। पास पड़ौसियोंने उसकी लाश जलाई। आग समाप्त होनेपर जब देखा तब वहां पर अशर्फियोंके टुकड़े मिले तभी वे समझगये कि लोभके वश होकर वह अशर्फियां खागया और मरगया! मनुष्यकी बाततो दूर रही पशु पक्षी भी लोभकेवश जिससे प्रयोजन नहीं उनका भी संग्रह करते हैं।

एक चूहा था। कहींसे उसको २०रुपये मिल गये।

वह प्रतिदिन अपने बिलमें से एक एक रुपया बाहर लाकर एक के ऊपर एक रखकर देखता और बहुत खुश होता। एक बार एक रुपया लाता उसे रखजाता और दुबारा जाकर दूसरा रुपया लाता और उसपर रखदेता और इसी तरह बीसों रुपये लाकर उनको रखता, फिर इसीप्रकार उन्हें वापस भी लेजाता। एक दिन एक किसानने उसे यह सब कुछ करते हुए देख लिया। उसने इन रुपयोंको हथियानेकी सोची। वह दूसरे दिन उसी समय आया और जब उसीप्रकार चूहा १६ रुपये तो रखगया और २० वाँ रुपया लेनेगया तो उसने वे १६ रुपये चुपचाप उठाकर अपनी जेबमें रखलिये और भाग गया। जब चूहे ने वे रुपये वहां नहीं देखे तो तड़फ तड़फ कर मरगया। यह हाल तो पशुओंका है फिर मनुष्योंको तो हम देखते ही हैं कि इस लोभके कारण अनेकों अपने प्राण तक दे देते हैं।

इसलिये ही कहा जाता है कि परपदार्थोंमें प्रीति या ममत्वभाव रहेगा तो उत्तम शौचधर्म प्रगट नहीं हो सकता। उत्तम शौचधर्म प्राप्त करनेकेलिये परपदार्थोंसे ममत्व हटाना चाहिये। परपदार्थोंसे ममत्व हटा कि आत्मामें स्थिति सुनिश्चित है जो सत्य सुखका मूल है।

उत्तम शौच धर्म ब्रह्मचर्य व्रतके धारणमें होता है।

स्त्रीके मोहभावमें लीन रहना कितना अपवित्र परिणाम है। उसमें उसका ज्ञान गायब होजाता है। स्त्रीभोगका परिणाम अत्यन्त अशुचि परिणाम है। ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला ही इस उत्तम शौचधर्मको पासकता है। उत्तम ब्रह्मचर्य भी वह है जहां निजमें रहनेवाली परस्त्री अर्थात् रागादि परिणति—परपरिणतिसे भी रुचि नहीं रहती क्योंकि यदि परस्त्रीमें आत्माका भाव होता है तो वह हमेशा परपरिणतिमें ही लगा रहता है। परपरिणतियोंको जिसने अपना हित समझा वह निजकी परणतिमें नहीं रहा। यह उत्तम शौचधर्म ब्रह्मचर्यधर्मके धारण करनेमें ही प्रगट होता है। अर्थात् यह शौचधर्म ब्रह्मचर्य व्रतके धारीके ही प्रगट होता है। सारांश यह है कि पवित्रता उसके ही आती है जिसने परपदार्थको पर समझा है और निज ध्रुव ज्ञान स्वभावको निज समझा है। नहीं तो पर तो न अपना है और न होगा, विकल्पसे व्यर्थ बरबाद होजायेंगे।

एक आदमी था उसको स्वप्नमें कहींसे दो हजार रुपये की थैली मिल गई। वह उस २५ सेरकी थैलीको लिये चलरहा था। मारवाड़ जैसी भूमि थी। उसके कन्धे दुःख रहे हैं यह स्वप्न स्वप्नमें ही देखरहा था। कन्धे दुखने लगे इसलिये वास्तवमें वह उन्हें दाबने लगा। इतनेमें नींद उचट गई। अब उसका वह २००० हजार गायब

सेठने इन्कार करदिया। इसपर उन्होंने अपने मनमें पक्का विचार करलिया कि हम तो इस सेठसे एक लाख रु० लेकर ही रहेंगे। उसके मकानके बाहर अनशन करके बैठ गये। एक दिन सेठानी आई और उसने पूछा कि बच्चा तुम यहां भूखे क्यों बैठे हो? तो उन्होंने कहा कि इस प्रकार हमारा एक अस्पताल खोलनेका विचार है। हमने सेठजी से उसकेलिए एक लाख रुपया मांगा था, परन्तु उन्होंने इन्कार करदिया अतः हम यहां अनशन करके बैठे हैं। सेठानीने कहा कि लो भाई, मैं तुम्हें एक लाख रुपये देती हूँ। परन्तु उसने कहा कि मैं तो सेठजी से ही लूंगा। चार-पांच दिन इसीतरह निकल गये तो सेठजीपर भी इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि उन्होंने उसे बुलाकर पूछा कि क्यों भाई, तुम्हारी योजना कितनेकी है? उसने कहा कि ५ लाख रुपयेकी। तो सेठजीने उससे प्रभावित होकर पूरी ५ लाख रुपयेकी रकमका चैक काटकर उसे देदिया। देखो शुद्ध भावोंका असर चीसोंपर भी पड़गया। पवित्र भाववाले अपने प्राणोंकी भी परवाह नहीं रखते। वे तो ज्ञान, सत्य, सुख शांति निर्मलताकी रक्षा करते हैं।

अकलंक और विकलंकका उदाहरण लेलो। उनका कितना बड़ा त्याग और निर्मल परिणाम था। उन्होंने जगत्में कितनी शांति पैदा की। आज अकलंक नहीं होते

तो हमारा क्या हाल होता ? जैनधर्मका नाम सुनकर जब फांसी देदी जाती थी उस अवस्थासे अनुमान करो ! आज हम सब इस पवित्र धर्ममय छत्रछायामें नहीं होते ।

यह शौचधर्म जैनागमके अभ्यासमें होता है । यह धर्म उत्तम २ गुणोंके मनन करनेसे होता है । यह सब शौच-पवित्रताके उपाय हैं । वस्तुतः सब उपायोंमें स्वभाव दृष्टिका उपाय गर्भित हो तो उत्तम शौच प्रकट होगा ।

बाह्य पदार्थोंका त्याग करनेसे शौचधर्म होता है । बाह्यके पदार्थ हैं तो अपनेसे भिन्न ही, बस श्रद्धा भी इसी प्रकार करलो धर्म होजायेगा । आत्माके निर्मल परिणामों से शौचधर्म होता है ।

इसतरह उत्तम शौचधर्मका वर्णन करते हुए कहरहे हैं कि जिनेन्द्रदेवकी पूजा आदि करनेमें शौचधर्म प्रकट होगा । वहाँ भी जो ज्ञानानुभव हो वह शौचधर्म है । जिसकी बाह्यपदार्थों में ममता होगी वह भगवानकी पूजा करके भी वैभव नहीं पासकता । जहाँ परपदार्थों की आशा लेकर भगवानकी पूजा की जाये वहां तो उल्टा पापबन्ध होजाता है । पूजा तो अपने उपयोगको बाह्यसे हटाकर जिन भगवानका आश्रय लेकर निज भगवान आत्मामें उपयोग लगानेके लिए कीजाती है और जहां उपयोग

आत्मामें लगा वहाँ तो मोक्षभी दुर्लभ नहीं, स्वर्ग आदि की सम्पदा व लौकिक-वैभव तो भूसेके समान है। जिनेन्द्रदेवकी निज भावभक्तिपूर्वक पूजा करनेसे शौचधर्म होता है।

संसारको अन्धकारमय जानकर एकाग्रचित्तसे इस शौचधर्मका पालन करो। अपनी आत्माका उद्धार चाहते हो तो हे भव्यजन, अपने आपपर दया करो और समस्त पदार्थ जो जगमें हैं उनसे ममत्व त्यागो और इस एकाकी, स्वतन्त्र निज ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा रखो।

: पांच :

उत्तम सत्य धर्म

निज आत्मपदार्थ जैसा स्वयं सत् है वैसा जानना, देखना अथवा कहना उत्तम सत्य है। धर्म निजका भाव है अतः जिस ज्ञान अथवा वचनका स्वयंपर प्रभाव है वही उत्तम सत्य है अर्थात् सम्यक् विश्वाससहित लक्ष्यमें आया हुआ आत्मस्वभाव उत्तम सत्य है। उसको वचनोंसे कहना उत्तम सत्यवचन है। सत्यपालनसे पहिले यह निर्णय तो करलेना आवश्यक ही है कि ध्रुवसत्य क्या है। यद्यपि

अपनी २ विवक्षाओंसे ध्रुवअध्रुव विभावपर्याय आकार सभी सत्य हैं किन्तु ऐसा सत्य कौन है जो परके आश्रय बिना अहेतुक स्वयं सत्में होनेवाला है। ऐसा सत्य यदि आत्मामें खोजा जाये तो वह चैतन्यस्वभाव है। यही अनादि अनन्त अहेतुक एक स्वरूप है इसके ही आलम्बन में सिद्धि है। आत्मस्वभाव विकासके विपरीत जो भी वचन हैं वह सब असत्य हैं। इसी कारण तो एक जगह शास्त्रकारने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि सद्गृहस्थ व्यापारविषयक बातको यथार्थ कहे तब भी वह अनात्म-विषयक होनेसे असत्य है। उस असत्यका गृहस्थत्यागी नहीं होसकता इसलिये वह सत्यमहाव्रती नहीं किन्तु सत्याणुव्रती है। देखो भैया, जहां परविषयक बातको चाहे जैसी हो तैसी कहे तब भी असत्य बताया है फिर अन्य सफेद झूठोंको तो कहा क्या जावे? यह समस्त जगत् अपनेसे सर्वथा भिन्न है इसके परिणमनसे हमारा परिणमन नहीं होता। किसीभी अन्य द्रव्यसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि सब अपने-अपने स्वरूपमें हैं। अपने चतुष्टयसे परिणमते हैं। लोक लौकिकअसत्य भी इसी बाह्यजगत्को निमित्त-आश्रय बनाकर बोलनेका यत्न करते हैं। यहां न तो बाह्य अर्थ हितरूप है और न यह विभाव हितरूप है। केवल स्वभावसे विपरीत चेष्टा होनेसे संसारका क्लेश ही

असत्यसे होता है। सत्य सुखका मूल है। सत्यसे इस लोककी विपदायें भी शान्त होजाती हैं। प्रथम तो सत्यवादी परउपसर्गसे होते हैं किन्तु अन्तमें विजय सत्यकी ही होती है।

एक सत्यव्रती राजा था उसने एक नया बाज़ार खुलवाया और यह कह दिया कि बाजारमें जो सौदा नहीं बिके वह हम खरीद लेंगे। एक आदमी शनीचरकी मूर्ति एवं अन्य भी मूर्तियां लेकर बाजारमें आया उसकी और तो सब मूर्तियां बिक गईं किन्तु शनीचरकी मूर्ति किसी ने न ली क्योंकि लोगोंको यह ख्याल था कि जिसके घर शनीचर आजाता है उसके सम्पदा नहीं रहती। खैर वह मूर्ति लेकर राजाके यहां गया कि महाराज मेरी यह मूर्ति नहीं बिकी, तब राजाने उसके जो दाम मांगे दिये और खरीद ली। कथा है कि शनीचरकी मूर्ति आते ही धन लक्ष्मी भागने लगी, राजाको कहा कि तुम्हारे घरमें शनीचर आगये इसलिये मैं जाती हूँ। राजा बोला जो तुम्हारी मर्जी पर मैं सत्यको तो न छोड़ूंगा। इसके बाद धर्म (पुण्य) जाने लगा उसने भी राजाको सूचनादी। राजाने कहा कि मैं सत्यको तो नहीं छोड़ूंगा तुम्हें भी जाना हो तो जासकते हो। इसकेबाद सत्य जाने लगा। तब राजाने कहा कि हे सत्य तुम किसी भी प्रकार नहीं जासकते

तुम्हारे ही लिये तो शनीचर खरीदा अर्थात् सत्य वचन निभानेमेंही तो शनीचर खरीदा तब तुम्हें जानेका अधिकार क्या है? सत्य निरुत्तर होकर लौटआया तब धर्म और लक्ष्मीको भी लौटना पड़ा। यह अलंकारिक कथा है। तात्पर्य यह है कि सत्यके रहनेपर सभी गुण और वैभव वर्द्धमान रहते हैं। असत्यके भावसे ही आत्मा कलङ्कित होजाता है। फिर उसके अंतरङ्गसे क्रोध, मान, माया, लोभ छुपे छुपे बढ़ते रहते हैं वहां धर्मका प्रवेश नहीं होता और सदा आकुल व्याकुल बना रहता है। जिसके अन्दर अभी लौकिक सचाई भी नहीं है वह दूषित आत्मा तो धर्मपालन का पात्र ही नहीं, परमार्थसत्य आत्मतत्वके अनुभवसे वह बहुत दूर है। भैया यह मनुष्यभव ही ऐसा है जहां हितमितप्रिय यथार्थ एवं व्रतनियमोंको पालते हुए अनुभवपूर्ण वचन बोलनेका अवसर प्राप्त है। यदि यहां वचनोंका दुरुपयोग किया तो ऐसे ही भव उस असत्यवादी के सुनिश्चित है जहाँ अक्षर बोलनेकी सामर्थ्य नहीं या जिह्वा ही नहीं होगी।

हितमितप्रिय वचन बोलना सत्य वचन है। सत्य अहिंसाकी रक्षाके अर्थ है अतः जहां दूसरेका दिल दुखाने का भाव है अथवा असावधानी है वहां जो कुछ भी वचन घातनिमित्तक निकलता है वह सब असत्य है। अहित-

अप्रिय वचन बोलने वाला तो हृदयका निष्ठुर है। जितना वचनबाण तीक्ष्ण घाव करदेता है उतना लोहेका बाण भी नहीं करता। वचन ही एक ऐसा वैभव है जिससे मनुष्यके अन्तरङ्गका प्रसार होता है। मनुष्यको अहित स्वच्छन्द अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये इसका फल पछताना और कर्मबन्धनका भार ढोना ही है।

एक बार कोई लकड़हारा जङ्गलमें गया। उसने लंगड़ाते हुए सिंहको दीनदशामें देखा। उसके पैरमें कांटा लगा हुआ था। उसने गिड़गिड़ानेके शब्दमें प्रार्थनाकी। लकड़हारेने कांटा निकाल दिया। इससे प्रसन्न होकर सिंह ने सकेत किया कि तुम अपनेपर बोझ क्यों लादते हो मेरी पींठपर लादलो मैं तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा। उसने सिंहकी पींठपर लादकर घर बोझ लाना प्रारम्भ करदिया। बोझ खुद तो लादना न पड़ता था सो वह चौगुना बोझ लादने लगा। लकड़हारा थोड़े ही दिनोंमें धनपति हो गया। इसी प्रसङ्गमें किसीने पूछा कि आप इतने जल्दी धनी कैसे होगये तब लकड़हारा बोला कि एक ऐसा स्याल हाथ आया जिसकी वजहसे जल्दी सम्पन्न होगया। यह बात सिंहने सुनली तब दूसरे दिन लकड़हारा लकड़ी का बोझ लादनेको हुआ तब सिंहने कहा कि भाई आज तुम अपनी कुल्हाड़ी मेरी गरदनपर इतने ज़ोरसे मारो

कि मेरी गरदनके टुकड़े होजायें। यह बात जानकर लकड़हारा बहुत डरा और बोला आज कैसी अनहोनी बात बोल रहेहो भाई। सिंह बोला हमारा यही निश्चय है कि तुम अपनी कुल्हाड़ी जल्दी मेरी गरदनपर मारो अन्यथा मैं अभी तुम्हें मार डालूंगा। यह बात सुनकर लकड़हारेने अपने प्राणरक्षाके ख्यालसे सिंहकी गरदनपर बड़े जोरसे कुल्हाड़ा मारा। सिंह अत्यन्त घायल होता हुआ कहता है कि देख रे मनुष्य तेरे कुल्हाड़ेका वार तो मुझे सहन होगया है परन्तु तेरे वचन बाणोंका वार जो तूने मुझे स्याल बताया सहन न करसका। इस घटनासे लकड़हारा भी स्वयं बहुत पछताया। अहित अप्रिय वचन बोलना हिंसा है। जिसने लौकिक सत्यका भी अवधान न किया वह परमार्थ सत्यसे तो बहुत दूर है। मैं मनुष्य हूं, धन पति हूं, मेरे पुत्र आदि हैं, मैं कुटुम्बको पालता हूँ, मैं अमुकका विनाश करदूंगा आदि अभिप्राय असत्य हैं, परमार्थसे विपरीत हैं तब इन अभिप्रायोंकी प्रेरणाको निमित्त पाकर वचन वर्गणा प्रकट होती है वह भी इसी हेतु असत्य है। परपदार्थ तो जैसा है वैसा ही है उसमें क्या सत्यपना है क्या असत्यपना है। सत्यता असत्यता तो अभिप्रायसे सम्बन्ध रखती है। वस्तुके स्वरूपसे विपरीत अभिप्राय असत्य है वस्तु स्वरूपके अनुकूल अभिप्राय सत्य है।

वस्तुतः निज सर्वशक्तियोंका अभेद पिंड अखण्ड है उसका कार्य-परिणमन उसहीमें स्वयंमें है और वह परिणमनशक्ति की दशा है, सर्वपदार्थ इसीतरह अवस्थित हैं। किसी पदार्थका किसीसे वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं है अतः कोई किसीको परिणमाता नहीं है। इसतरह स्वतन्त्र दृष्टिसे पदार्थको अद्वैत लखना, ऐसा ही ज्ञान होना सत्य है। अहो, इस जीवने अबतक इस सत्यका ध्यान ही नहीं किया जिसके कारणसे ही संयोगी दृष्टि रखकर कर्तव्यका भ्रम बनाये रहा और क्लेश पाता रहा। परमार्थतः सत्यको पानेवालेके व्यवहारमें सत्यका व्यवहार आता है।

वचनके सम्बन्धमें ४ श्रेणी हैं—(१) सत्यमहाव्रत (२) भाषासमिति, (३) सत्यधर्म, (४) वचन गुप्ति। इनका अन्तर इसप्रकार है: १—जैसा पदार्थ वैसा ही कहना चाहे वह परिमित हो या अपरिमित वह सब सत्यमहाव्रत है। २—सत्य बातको परिमित ही कहना अर्थात् हितमित-प्रिय वचन बोलना सो भाषासमिति है। ३—केवल आत्मविषयक वार्ता रहना सत्यधर्म है। ४—वचनमात्रका गोपन करना वचनगुप्ति है। यह उत्तम सत्यधर्मका प्रकरण है जिससे हमें यह जानना चाहिये कि यदि बोलना ही पड़े तो आत्मविषयक हितमितप्रिय वचन बोलना योग्य है।

सत्यधर्म पालनके अभिलाषी भव्योंको दुष्ट वाक्य और परनिन्दाकी वाणी कभी नहीं बोलना चाहिये। सत्यवादी तो दयालु प्रकृतिवाला होता है। सत्येन्द्रका स्वप्नमें भी परघात-परपीड़ाका भाव नहीं होता अतः सदा प्रसन्न और सुखी रहता है। सत्यके होते हुए कोई दोष घर नहीं करपाते अतः निर्दोषताके कारण सत्यवादी सदा प्रसन्न रहता है। मनुष्यकी शोभा सत्यसे है। आत्माका श्रृङ्गार सत्य है। सर्वगुणोंकी महिमा सत्यगुणके कारण वृद्धिगत होजाती है जैसे अनेक गुणवाला भी पुरुष यदि असत्य बोलता है लोकोंमें उसकी असत्यवादिता की प्रसिद्धि है तब कोई भी गुण श्लाघताको प्राप्त नहीं होते। सत्यके विना व्रत नियम भी ढोंगमात्र है। तात्पर्य यह है कि आत्मोन्नति सत्य विना नहीं होसकती। संसार-समुद्र से पार होना सत्यरूपी नौका विना नहीं होसकता। अतः संसार क्लेशसे भयभीत एवं आत्मस्वभावके रुचिवान भव्यो! सम्यग्दर्शनसहित हितमितप्रिय वचन बोलनेरूप इस सत्यधर्मको अंगीकार करो। यहां जो प्रवृत्ति है वह हेय ही है इस श्रद्धाको न भुलाना चाहिये। यहां तो यह अभिप्राय है कि अनुरागरूप अशक्तिवश बोलना पड़ता है तब ऐसा वाग्व्यवहार हो। वचन है सो धर्म नहीं क्योंकि वचन आत्माकी परिणति नहीं, सत्यवचन बोलनेको उपचार

से धर्म कहा है। परमार्थतः सत्य यह स्वयं चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा है। इसकी उपलब्धि उत्तम सत्य है। उसके अभिप्रायवालेके जो वचन हैं वह भी सत्य हैं। सत्य ही आत्महित है। इस सत्यका आदर करो। सत्य-वादीकी आपत्तियोंका नाश होजाता है। सत्यसे ही आत्मा की विजय होती है। अतः सत्यमय निज चैतन्यका अनुभव करो और परमार्थतः या लौकिक किसी प्रकारका असत्य व्यवहार मत करो। सत्यकी उपासना करो।

: छः :

उत्तम संयम धर्म

आज दस लक्षणपर्वका छठवां दिन है। इसके अनुसार आज उत्तम संयमधर्मका वर्णन है। अविकारी निज ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि के अवलम्बनसे स्वयं प्रगट होने वाले शुद्ध स्वभावमें विरत रहना-संयत होना सो उत्तम संयम है। भव्य जीव दो प्रकारके संयम, एक इन्द्रियसंयम और दूसरा प्राणसंयम, दोनों प्रकारके संयमोंका पालन करते हैं, ऐसा बड़े २ मुनिराजोंका कथन है। संसारके

जितने सुख हैं वे सभी धर्मके आधीन हैं। संसारके ये सुख विनाशक हैं। आज कोई धनी है कल देखनेमें आता है कि वही भिखारी बनकर दर दरपर भाख मांग रहा है। आज किसीके पुत्र, प्रपौत्र आदिसे घर भरा हुआ है कुछ ही दिनों बाद वह घर श्मशानको भांति सुनसान होजाता है। औरों की तो बात छोड़ो रामचन्द्रजी सरीखोंको, जिनको सुबहके समय राज्य मिलना था दुपहरके समय वह जंगलको चले जाते हैं। कोई भी जीव संसारमें यह नहीं कहसकता कि मैं सदैव सुखी हूँ। आज सुखी है तो कल दुखी होजाता है। परन्तु खेद है कि इसप्रकारके विनाशकी सुखमें भी ममत्वबुद्धि कर करके वह महान पापी होरहा है। ऐश्वर्य पाकर अपने आपेमें नहीं रहता, फल पापकर्म बांधलेता है। अधिकतर ये सांसारिक सुख पाप ही के कर्त्ता हैं। ऐसे सुखोंकी रुचि होना उनमें सुखबुद्धि करना, यह विभाव मनुष्य जीवनको बर्बाद करता है। जितना कठिन मनुष्यभवको पाना है उतना कठिन और किसी भवको पाना नहीं है। देव भी इसको तरसते हैं मनुष्य भी तरसते हैं। इस मनुष्यभवमें ही संयम होना है। सब कुछ सुख-सामग्री होते हुए भी अपने मनको उनकी ओरसे रोके रखना यह मनुष्यभवमें ही होसकता है देवोंमें नहीं। इसी भवसे ही मुक्ति होती है। मनुष्यजन्म

के अतिरिक्त अन्य जीवनमें संयमधर्म नहीं होता। ऐसे मनुष्यजीवनमें संयमधर्म न पाला तो इससे कोई लाभ नहीं। फिर मनुष्यजन्म पानेका लाभ क्या लिया? कहते हो बच्चोंको पालनेका लाभ लिया। अरे, बच्चे बच्ची तो तिर्यञ्चोंके भी होते रहते हैं। इसलिये मनुष्य भवको वृथा न खोकर संयमधर्मका पालन करना चाहिये।

आजकी ही घटना देखो जो हमको अभी मालूम हुई है। हमको तो अब भी सच्ची सी मालूम नहीं होती, परन्तु ऐसे आदमियोंने कही है कि सच्ची माननी पड़ती है। केसरलाल जी पापड़ीवाल जो इस मन्दिरमें आते थे, रात्रि तक तो थे और आज सब कुछ छोड़कर चलेगये। खुशी इस बातकी है कि उन्होंने कुछ भी वेदना नहीं पाई और समताके प्रयत्नमें मरण हुआ। आत्मा तो अमर है वह कभी मरता नहीं, मात्र देहसे वियोग हुआ। वे कल तक हमारे बीच थे, शाम तक हमारे बीच थे, परन्तु आज नहीं हैं। वे अपने पुण्यके अनुसार गतिमें गये। उन्होंने इस मन्दिरको सम्भाला, देखा, सब कुछ किया। हमें उनका आभार समझना चाहिये जिसने अपनी शक्ति के अनुसार उपकार किया, उनकी सद्‌गति हो। ऐसी ही हालत हमारी भी होगी। अचानक किसी भी समय हमें भी सब कुछ छोड़-छाड़कर चला जाना होगा। जो कुछ

सामग्री प्राप्त हुई है वह अव्वल तो जीवनमें ही पुण्यक्षय से बिछुड़ जायेगी अन्यथा मरणसमय तो हमें छोड़नी ही पड़ेगी। यदि इस समय इनमें ममत्व है तो छोड़ते हुए बहुत दुःख होगा। अतः हमारा कर्तव्य है कि वह स्वयं हमसे छूटे इससे पहले ही हम उन्हें छोड़दें और छोड़ क्या दें भैया, वह तो हमसे छूटी ही हैं, भिन्न ही हैं। हां श्रद्धा इसप्रकारकी बनालें कि वह सब हमारी नहीं हैं। सदैव हमें संयमधर्मपर अपनी दृष्टि रखना चाहिये। मुनिराज कहते हैं, हे भाई, यदि अपने मनुष्यजन्मकी सफलता चाहते हो तो दोनों प्रकारका संयम धारण करो।

आज उत्तम संयमधर्मका दिवस है। संयमधर्म किसे कहते हैं? सम्यक्‌दर्शन सहित अर्थात् अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानस्वभावमय, अपनी ही आत्माकी दृष्टि रख कर यह मैं हूं ऐसी अटल श्रद्धा होकर इसी वीतराग ज्ञानमय भावमें स्थिर होजाना सो उत्तम संयमधर्म है। यह उत्तम संयमधर्म आत्माका स्वभाव है। यह धर्म देहकी प्रवृत्तिमें नहीं है, किसी क्षेत्रमें नहीं है, किसी कालमें नहीं है, किसी परपदार्थमें नहीं है, मेरा यह धर्म अहंन्तदेवमें नहीं है, यह मेरे आत्मदेशके सिवाय किसी अन्यप्रदेशमें नहीं है। हर समय मुझमें है किसी विशेषकाल ही में नहीं है, मुझमें ही है किसी परपदार्थमें नहीं है, मेरे ही

भावमें है किसी परके भावमें नहीं है। यह धर्म कहींसे आना जाना नहीं है। अपनेसे विभावभाव हटादो बस यह धर्म अपनी आत्मामें रहजायेगा। ऐसे संयमधर्मको अन्यत्र लक्ष करके कैसे पाया जासकता है? कोई समझें अर्हन्त भगवानकी पूजा करके इस धर्मको पालूंगा, अरे भाई! वह पूजा भी तो इसीलिये है कि अर्हन्तदेवका लक्ष्य करके अपने आत्मदेवका लक्ष्य होजाये। धर्म जब भी प्रगट होगा, अपने आपमें शुद्ध ज्ञानके विकासको लेकर होगा। धर्मके प्रगट होनेका और कोई जरिया नहीं। उत्तम संयम कैसे मिलेगा? आत्माके अनादि अनन्त ज्ञानके अन्तरप्रकाशमय रहनेवाले उत्तम भावोंको उत्तम संयमधर्म कहते हैं। उन भावोंकी प्राप्तिसे ही उत्तम संयम धर्म मिलेगा। जिनके प्राणियोंपर दया होती है, वह प्राणी लौकिक संयमधर्मकी रक्षा करते हैं। किन्तु जिनकी अपनी आत्मापर दया है और विषयकषायों आदिसे विमुखता है, वे अपनी आत्मारूप संयमधर्मकी रक्षा करते हैं।

जगत्में किसीको खम्भ बनकर नहीं रहना। प्रद्युम्न, कृष्णका छोटा लड़का, उसको वैराग हुआ। वह कृष्णके दरबारमें बैठा था उसने कहा कि हमारे वैराग हुआ, हम संयमकेलिये जायेंगे। सबने उससे कहा कि तुम्हारे दादा,

ताऊ आदि सब बैठे हैं, तुम इनके सामने यह क्या कहते हो ? तब वह जवाब देता है कि इन दादा, ताऊ आदि सबको यदि जगत्में खम्भ बनना है तो ये बने रहें, मुझे तो खम्भ नहीं बना रहना । यह कहकर वह वहांसे अपनी स्त्रीके पासजाता है और कहता है कि मुझे वैराग हुआ है इसलिये मैं तुम्हें छोड़कर जारहा हूँ । स्त्री कहती है कि नाथ अभी तक तुम्हें वैराग नहीं आया, यदि तुम्हें वैराग आजाता तो तुमको हमसे पूछनेकी क्या आवश्यकता थी और तुम संयम धारणकरो या न करो मैं तो यह सब छोड़-छाड़कर संयम धारण करती हूँ । स्त्री यह कहकर प्रद्युम्नसे पहले खुद वैराग धारणकरके चलीगई । इसलिये जो अपना सुधार करजायेगा, सो इस संसारमें ठीक है और जो अपनी दृष्टि अपनी आत्माके सुधारमें नहीं देगा, पापोंमें ही रत रहेगा, वह संसारमें भ्रमणकरता ही रहेगा । इसलिये ऐसे मनुष्यभवको वृथा नहीं खोना चाहिये । देवता लोग भी इस भवकेलिये तरसते हैं । ऐसे अवसरको हाथसे न जानेदो और उत्तम संयमका पालन करो । जो मुनि हुए, देव हुए, सब आपसमें ही से तो हुए । क्या फिर आप भी वैसे ही मुनि और देव आदि नहीं होसकते ? अरे भाई, परवशतामें तो नाना दुःख सहने पड़ते हैं । जब कर्मोंकी थपेड़ लगती है तो क्या क्या सहना

नहीं पड़ता। बीमार होजाते हैं, महीनों २ खानेको कुछ नहीं मिलता, स्त्री-पुत्र आदि मरजाते हैं। सबकुछ सहन करना पड़ता है और यहां यदि कहदें कि भाई एक दिनके लिये उपवास करलो या कुछ समय स्त्री-पुत्रोंसे अलग रहकर धर्मसाधन करलो तो कहने लगते कि हमसे तो नहीं बनता। भाई, जो २ परेशानियां परवश होकर सहनी पड़ती हैं यदि उनकी शतांशभी अपनेवश होकर सहनकरले तो क्या अपना उद्धार नहीं करसकते? संयम आत्माका अपूर्व विश्राम है जिसमें दुःखका लेश नहीं है। ऐसे संयमको जो दो प्रकारका है, भव्यजीवोंको पालन करना चाहिये।

संसारमें संयमका पाना बहुत दुर्लभ है। सबकुछ शीघ्र ही प्राप्त होजाये, परन्तु संयम प्राप्त नहीं होजाता। जो मनुष्य भव पाकर वृथाही खो दे वह तो महामूर्ख है। जिसके संयम नहीं होता वह संसारमें त्रिकालतक भ्रमण करता है। मनुष्यजीवन तो इसके पालन करनेकेलिए ही मिला। सबकुछ तो और किसी भी भवमें मिल जायेगा। यदि मनुष्य इस धर्मका पालन नहीं करता तो मानों विधि यह जानकर कि इसको मनुष्यजीवन देनेकी आवश्यकता नहीं, तिर्यञ्चगतिमें पटक देता है।

संयमका पालन करनेकेलिए सबसे पहले अपने हृदय क्षेत्रको अच्छी तरहसे बनानेकी ज़रूरत है। यह कैसे

बनेगा ? सम्यक्त्वभावनासे बनेगा। वस्तुका जैसा स्वरूप है, उसकी श्रद्धासे बनेगा। मेरा स्वरूप ज्ञानमय, कषायादि विकारोंसे रहित है इस वास्तविक श्रद्धापूर्वक अपनेको अकषाय समझकर क्या पुरुष विषयकषायोंमें प्रवृत्त होगा ? जिसने अपने आपपर दया की अर्थात् अपने स्वभावकी रक्षा की, विभावको हटाया, उसने दुनियांपर दया पालली। इसलिए अपने ज्ञानस्वभावको धारण करो। इन्द्रियदम आदि सर्वविधि ज्ञानीके प्रकट होवेगी ही। यह संयम पंचेन्द्रियोंको वशमें करनेसे होता है सो ज्ञानदृष्टि होनेपर ही इन्द्रिय समूल वश होजाती हैं। मात्रनाम निक्षेपसे वास्तविकता नहीं।

एक राजा था, उसका नाम सर्वजीत था उसको सारी दुनियां सर्वजीत कहती, परन्तु उसकी माता उसे सर्वजीत नहीं कहती थी। राजाने बहुतसे देश जीतलिये थे। वह एक दिन माताके पास गया और उसने पूछा कि मा, तुम मुझे सर्वजीत क्यों नहीं कहतीं, सारी दुनियां तो मुझे सर्वजीत कहती है। मां ने कहा कि अभी तू सर्वजीत हुआ भी है ? तो वह बोला कि क्यों नहीं हुआ। सब देश मेरी आज्ञामें है। तब मां ने कहा कि तेरा सबसे बड़ा दुश्मन तो अभीतक तेरे सामने ही है, उनको जीतेगा तब सर्वजीत कहलायेगा। वह दुश्मन है इन्द्रियोंमें विश्वास।

जिस दिन इस दुश्मनको तू जीतलेगा उस दिन मैं तुझे सर्वजीत ही नहीं कहूंगी बल्कि तेरे चरणोंमें भी गिर जाऊंगी। सो भैय्या, असली शत्रु तो हमारे पांचों इंद्रियों के विषय हैं इन्हींको वशमें करो अवश्य कल्याण होगा। सब संसार तुम्हारे चरणोंमें झुक जायेगा।

भैय्या! सबकुछ हमें जो मिला, वह सब एक दिन रह ही तो जायेगा। किन्तु किसी न किसी हालतमें यह आत्मा रहेगी ही और अपने कियेहुए भावसे सुखदुःख तो भोगना ही पड़ेगा। इसलिये अपने आपके ज्ञानस्वभावको पहिचानो और विषयकषायोंसे और इन्द्रियोंकी दासतासे अपनेको बचाओ यही श्रेयष्कर है। जिस समय अपने ही दर्शनज्ञानचारित्र पर श्रद्धा होगी, पर्यायोंमें रुचि या आत्मबुद्धि नहीं रहेगी, दुनियांकी कितनी ही निन्दा करने में क्षोभभाव नहीं आयेगा। क्षोभके न होनेपर ही तो आत्मसंयम होता है।

संयम दुर्धर तपके धारण करनेसे होता है। तब क्या क्लेशसे संयम होता है? नहीं, संयम क्लेशके नाशसे होता है। तपस्यामें क्लेश नहीं होता। परन्तु यथाशक्ति तपस्या करो। शक्तिके अन्दर तप कररहा है तो उसका अन्तर निर्मल ही बना रहता है। शक्तिसे बाहर तप करनेमें तो

क्लेश होता है। यथाशक्ति तप करनेमें बड़ा आनन्द होता है। यह व्यवहार संयमका रूप है। बाह्य किसी पदार्थमें रत न होकर एक अपनी आत्मामें यही समझ रखना कि एक ज्ञाताद्रष्टा होना ही सुखकी चीज़ है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी विकल्प हो वह सब दुःख है, यह अन्तःसंयम है।

एक कविने एक व्यर्थ मनुष्यजीवन खोनेवालेको एक कथोक्तिसे समझाया। एक बार एक मनुष्य मरगया। मरघटमें उसकी लाश पड़ी, शृगाल आते हैं खानेको तैयार होते हैं। किसी कुत्तेने उस लड़ैये स्यालको समझाया—

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ।
नेत्रे साधु विलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ॥
अन्यायार्जित वित्त पूर्णमुद्रं गर्वेण तुंगं शिरोः।
रेरे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः॥

हे लड़ैये, तू इसका हाथ मत खा, यह हाथ पापी है, इस हाथसे उसने कभी दान नहीं किया, इसलिये यह खाने लायक नहीं है। इसके कानको भी मत छू, इसने कभी धर्मका एक शब्द भी नहीं सुना, जिनवाणीके वचन कभी इस कानमें नहीं आये, अतः यह भी खाने योग्य नहीं है। इसकी आंख दिखनेमें तो सुन्दर दिखती है, परन्तु इसने

कभी साधु, संत, महापुरुषोंके दर्शन नहीं किये, इसलिये ये नेत्र भी पापी हैं। तू इसका पेट भी मत खा, यह पेट अन्यायसे कमायेहुए धनसे भरागया है, इसलिये यह भी तेरे खाने योग्य नहीं है। इसका सिर भी बिल्कुल अपवित्र है, इसने अभिमानमें आकर, गर्व में आकर, हमेशा अपने आपको ऊँचा ही उठाये रखा, महापुरुषोंके सामने भी कभी नहीं झुका। इसलिये यह साराका सारा शरीर ही तू मत खा, यह तो बिल्कुल अपवित्र है। यह साराका सारा शरीर नीच है।

इसी तरह यदि अपनी आत्माका ख्याल नहीं किया तो सचमुचमें ऐसा ही हमारा शरीर होगा। यह तो मात्र परके व्याजसे उपालंभ है अपवित्र नीच तो मलिन आत्मा ही है। यह संयम चंचल मनके रोकनेसे होता है। यथा-शक्ति कायक्लेशसे भी यह उत्तमसंयम होता है। काय-क्लेश दुनियांको दीखते हैं, परन्तु पूज्यपाद स्वामीने बताया—आनन्दोनिर्दहत्युद्धं कर्मेन्धन मनारतं।

न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥

अर्थात् कर्मकी निर्जरा दुःखसे नहीं होती, काया-क्लेश से नहीं होती, आत्मांका निजा आनन्द जब प्रगट होता है तब कर्मकी निर्जरा होती है। परिणामोंमें निर्मलता आती है उसे कायाक्लेशका भान ही नहीं, उस परिणामोंकी

निर्मलतासे परमआनन्द रूपरहे, ऐसे आत्मीय आनन्दसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। कायक्लेश नाम तो रागियोंकी ओटसे रखागया।

यह उत्तम संयम परिग्रहके त्याग करनेसे होता है। परपदार्थोंमें जिनको रुचिहो उनका इसी लोकमें विनाश होरहा है। हमारे गुरुजीने एक बार कहा था कि एक बार उनके मित्रने उनसे कहा कि चलो नाटक देख आयें। उन्होंने कहा कि भाई तुम चार रुपये वाली सीटपर बैठोगे और हमको चार आना वाली सीटपर बिठादोगे, हम तो नहीं चलते। तब मित्रने कहा कि नहीं दोनों साथ ही बैठेंगे। बहुत ही टाला परन्तु वह न माना। बहुत कहने पर वे भी मानगये और उनके साथ देखनेगये। वहां एक सुन्दर युवती नाटक कररही थी। एक सेठको उसपर मोह आया। उसने एक परचा लिखकर स्टेजपर डाल दिया। उस स्त्रीने परचा देखलिया और वहीं उस पर्चेको गर्वसे रौंद रौंदकर कुचल दिया। सेठको बड़ा धक्का लगा कि उसने उसकी प्रेमपूर्ण मांगको कुचल दिया। तो उसके पास एक कटारी थी, उसने उस कटारीको अपने पेटमें वहीं मारकर आत्म-हत्या करली। यह बिल्कुल सत्य घटना है। यह किस चीजका फल है? असंयमका इन्द्रियोंको वशमें न करनेका।

इसलिये ही कहाजाता है कि अपनी इन्द्रियोंको संयमित करो। सप्त व्यसनोंका त्याग करो। जुवा खेलनेवाला चोरी करनेवाला, शिकारका शौकीन, वेश्यागामी, परस्त्री; लम्पटी, महापापी, मांसलोलुपी कभी भी संयम धारण नहीं करसकता। इनके त्याग करनेसे ही तो संयम होता है। यह तो अभी उत्तम संयमका बहुत हल्कारूप है। वास्तविक उत्तम संयम तो ज्ञानस्वभाव निजब्रह्ममें संयमित होनेसे ही होता है। ये इन्द्रिय विषय साक्षात् क्लेशोंमें पटक देते हैं फिर भी विषयेच्छाकी मदिरा पीनेका पागलपन नहीं छूटता।

एक बार कोई थानेदार एक स्त्रीपर आसक्त होगया। कुछ दिनोंतक उसका यह आसक्तपन चलता रहा। एक दिन उसके तबादलेका हुक्म आया। वह सोचने लगा कि हाय उस स्त्रीको छोड़कर जाना होगा। स्त्रीसे कहा कि तू भी मेरे साथ चल। उसने कहा कि मैं कैसे चल सकती हूं। तब उन्होंने यह कथा अपने एक मित्रसे कही। उस मित्रने जवाब दिया कि अच्छा मैं उसे ठीककर दूगीं। वह मित्र एक औरत थी। वह बोली कि तुम छिपकर देखते रहना मैं उसे ठीक कर दूंगी। वह राजी होगया। वह औरत उसके पासगई और उससे बोली, हे देवी! मैं बहुत दुःखी हूं, तुम यदि प्रयत्न करो तो मेरा उद्धार होजायेगा

और मैं सुखी होजाऊंगी। तब वह स्त्री पूछती है कि बात तो बताओ, मैं ज़रूर स्वीकार करूंगी। मित्र बोला कि मेरी एक बातका उत्तर देदो। उसने पूछा, क्या? तब वह पूछती है कि तुम यह बताओ कि तुम्हारी प्रीति अब तक कितने मनुष्योंसे हुई, बस इसीमें मेरा जीवन है। तब उसने एक नहीं अनेकों नाम बोले। उसके पास कागज़ था वह लिखती गई और वह थानेदार पीछे खड़ाही था। इसतरह उसने लगभग ६०–६५ नाम लिखादिये। फिर उसने पूछा और सोचलो कहीं भूलसे और नाम रहगया होगा। तब उसने और नाम लिखाये और अब ७० नाम होगये, परन्तु इन नामोंमें उस थानेदारका नाम नहीं था और उसने पूछा तो उसने जवाब दिया कि बस इससे ज्यादा और कोई भी नहीं। तब वह थानेदारके पासगई और बोली कि "मैं लिखदेखो पत्तरमें, तू सत्तरमें ना बहत्तरमें।" उसे तो तेरी प्रीति है ही नहीं, तब उस थानेदारकी उस स्त्रीसे प्रीति मिटगई।

इसीलिये कहागया कि इस मनुष्यजीवनको क्यों व्यर्थ गंवारहे हो। दूसरेके मोहमें पड़कर व्यर्थ अपनेको बर्बाद कररहे हो। उत्तम संयमधर्म इन परिग्रहोंके त्यागसे, इस मूर्च्छाके त्यागसे होता है।

संयम क्या है? संयम दोप्रकारके होते हैं। इन्द्रिय

संयम और प्राण संयम। इन्द्रियोंके विषयोंमें न पड़ना इन्द्रियसंयम कहलाता है और जीवोंकी रक्षा करना प्राण संयम कहलाता है। दयालु आदमीका सर्व ओरसे यह प्रयत्न होता है कि किसीभी प्रकार जीवकी हिंसा न हो। दया अपनी प्रवृत्तिसे, अपने परिणामोंके उपयोगसे होती है। सब प्राणियोंपर दया करो। इससे पहले अपने ज्ञान स्वभावकी दृष्टिपर दया करो। जो अपने ज्ञानस्वभावपर दया करता है उसके सदैव यह परिणाम होते हैं कि मेरे में मेरे स्वभावके विरुद्ध कभीभी रागद्वेष उत्पन्न न हो और जब रागद्वेष न होगा, समता परिणाम होंगे तब दूसरे का अहित उससे होजाये, असम्भव है। इससे सब प्राणियों पर दया होजायगी। यह संयमधर्म त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे होता है। सो उत्तमसंयमके लक्ष्य वालेसे अनुचित व्यवहार होता ही नहीं सो यह प्राणसंयम पलता ही है। यह संयम मन, वचन, कायके रोकनेसे होता है, सम्यक्ज्ञानकी प्रवृत्तिसे होता है। मिथ्यात्वमें पड़े रहनेवाले लोग कभी संयमको धारण नहीं करसकते। अपने ज्ञानस्वभावको देखो, यह परम शुद्ध है। यह मोह की प्रवृत्तियोंके वशीभूत होरहा है। इसको इन प्रवृत्तियोंसे भिन्न समझो। यह समझो कि मेरा काम मेरे ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि रखना ही है।

एक राजा एक बार हाथीपर सवार होकर वनमें जा रहा था। उसको एक कोली जो शराब पीये हुए था वह मिला। राजासे वह बोलता है कि श्रोवे राजू क्या हाथी वेचेगा ? राजाको बड़ा बुरा लगा। उसने राजदरबार में उस कोलीको बुलवानेकी आज्ञा दी और जब वह राज-दरबारमें आया तो उससे पूछा कि तू मेरा हाथी खरीदेगा ? वह समझ रहा था कि मेरेसे कोई खता होगई। बोला कि राजा, आप क्या कहरहे हैं ? मैं गरीब आदमी हूँ, हाथी कहांसे खरीदूंगा ? तब मन्त्रीके समझानेपर कि "यह नहीं कहता था शराब कहती थी" राजाको पता लगा कि वनमें उसका अपमान करनेवाला यह कोली नहीं था, वह तो शराब थी। इसलिये कहाजाता है कि सारी परमें ममत्व आदि बाह्य चेष्टायें शुद्धज्ञान स्वभावमय आत्माकी नहीं होरही हैं, यह चेष्टायेंतो हमारी मोहमदिरा की होरही हैं।

संयम त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे होता है। मनवचन काययोगोंके नियंत्रणसे होता है। गमना-गमनके त्याग करनेसे संयम होता है। उक्तसंयमको पालनेकेलिये ही यह बाहरी संयम है। वास्तविक संयम तो निज आत्मामें लीन होना है।

संयम हमेशा अपने आपकी व परकी रक्षा करता है।

लोगोंको ऐसा भ्रम होगया कि देश बरबाद हुआ तो धर्म से बरबाद हुआ। धर्मसे ही बरबादी कलह आदि सब हुआ। लोगोंको ऐसा भ्रम है परन्तु पाप ऐसा चालाक है कि यह सारी करतूत कररहा है और अपना नाम छिपाकर धर्मको बदनाम कररहा है। वास्तवमें पापका फल ही यह निर्धनता है, धर्मका फल नहीं।

एक बन्दर था, वह एक गाँवमें एक किसानके घर, जिस समय किसान खेती करने जाता था, आता था और अलमारीके अन्दर पड़ी उसकी रोटियाँ खाजाता था। किसानके पास तीन बैल थे उनमेंसे दो तो वह अपने साथ खेतीकेलिये लेजाता था और तीसरेको घरपर ही छोड़ जाया करता था। वह बन्दर नित्य ही उस किसानकी रोटियां खाकर उनका धौंनधान जो बचा रहताथा उसे उस बैलके मुंहपर लीपकर भाग जाता था। जब किसान लौटता था तो उस बैलके मुंहको धौन लगा देखता तो समझता कि वह बैल उसकी रोटियाँ खागया। यह समझ कर उसे मारता। रोज इसीतरह होता। एकदिन उसके पड़ौसियोंने उससे कहा कि भाई, 'तुम यह क्या करतेहो ? तो उसने कहा कि यह बैल रोज ही अलमारीमेंसे मेरी रोटियां निकालकर खाजाता है इसलिये मैं इसे पीटता हूं। पड़ौसी बोले कि बेवकूफ कहीं इस बैलका मुंह भी अलमारी

में जासकता है? तब उसने कहा कि इसके मुंहपर धान धान कैसे लगा रहता है? उन्होंने कहा कि एक दिन छिपकर इस बातको देख। उसने एक दिन वैसा ही किया, कहीं छिपगया। वह बन्दर रोज़की तरह समयपर आया और अलमारी खोलकर रोटियां खागया और धान बैल के मुंहके लगानेकेलिये जानेलगा। तब किसानकी समझ में सारी बात आगई और उसने बैलको पीटनेके बजाय उस बन्दरको ही पीटा। उस बन्दरकी तरह ही यह पाप भी चालाक है। खुद खोटे काम करता है, कितने कितने पाप कराता है और नाम कराता है धर्मका। तीर्थक्षेत्रों पर जाकर देखो। कितने जोगी साधु धूनी रमाये बैठे रहते हैं और पुजापे पाते हैं, परन्तु उनमेंसे बहुतोंके अन्तरंग में विषयकषाय भरे रहते हैं। हजारों स्त्रियोंके हरणके और तरह तरहके किस्से सुननेको मिलते हैं। काम खुद करते हैं और नाम करते हैं भगवानका बदनाम। इसीतरह हमको विषयकषाय खुदको भोगने हैं और हम नाम लेते हैं धर्मका। जगत्के लोग इस पापके कारण मिथ्यात्वमें भ्रमण करते हैं। इसलिये संयम धारण करो। दूसरोंके बहकावेमें मत आवो। पापोंसे मुख मोड़ो. इस संयमधर्मका बहुमान करो।

एक ज्ञानी पुरुष राजदरबारमें गया तो राजाने उसको

मान नहीं किया। तो वह राजदरबारमें कविता बनाकर पढ़ता है :

"त्वं चेन्नीचजनानुरोधनवशाऽस्मासु मंदादरः।
का नो सानदमानहानिरियता स्यात्किं त्वमेकः प्रभुः॥
गुञ्जापुञ्ज परम्परापरिचयादिभल्ली जनै रुज्झितं।
मुक्तादाम नधाम धारयति किं कण्ठे कुरङ्गीदशाम्॥"

हे राजन् तू नीच पुरुषोंके बहकावेमें और अनुरोधमें आकर दरबारमें यदि हम लोगोंका आदर नहीं करता है, तेरे दिलमें हमारे प्रति आदर कम होगया है, तो क्या हमारा मान न करनेसे मेरी कुछ हानि होगी? भीलनियों का जंगलमें यदि कोई मोतियोंका ढेर भी मिलजाये और अज्ञानवश वह उन मोतियोंको रगड़ने लगे तो क्या मोतियोंका मान भंग होजाता है? वह तो फिर भी रानियोंके गलेके हारमें शोभायमान होता है। इसीतरह संयमद्वारा कहाजाता है कि हे असंयमकी रुचि करनेवाले लोगों, यदि तुमने जगत्में भरे हुए असंयमके बहकावेमें आकर हमारा आदर छोड़दिया तो क्या हमारा महत्व गिरगया? मुझको धारण करनेसे भव्यजीव अनन्त सुखों को धारण करते हैं और सदाकेलिये सुखी रहते देखे जाते हैं। भैया आत्माको शान्ति इसी संयमधर्म के द्वारा होती है। परमार्थ दया करनेसे यह सयम होता है। जो संयम

धारणकी चेष्टा करता है और इसीमें श्रद्धा रखता है, इसी की कलामें रहता है और सदैव इसीकी चेष्टामें लीन रहता है उसका उद्धार होजाता है और वह परमशान्तिका अनुभव करता है। निश्चयसे देखा जाये तो मनुष्यको मोक्ष मार्गपर लेजाने वाला यह संयमधर्म ही है।

विशल्याको उसके पूर्वजन्ममें किसी अपहर्ताने भयानक जङ्गलमें असहाय अवस्थामें छोड़ दिया। वहां उसके कपड़े लत्ते फटगये और वह नङ्गी ही रहने लगी। वहां उसके पास कुछ खानेको था नहीं, इसलिये जो जङ्गली बेर आदि मिलते थे उन्हें ही खाकर वह अपनी उदरपूर्ति करती थी। परन्तु समताभावसे आत्म श्रद्धापूर्वक नियमसहित रहती थी। कुछ हजार वर्ष इसीतरह बीते कुछ दिनों बाद विशल्या को एक अजगरने डस लिया। इसीसमय उसका बाप उसे ढूंढता हुआ वहां आ पहुंचा और उसने अपनी लड़कीको आधा अजगरके मुंहमें पाया। बाप उस अजगरके दो टुकड़े करनेको तैयार हो ही गया था कि विशल्या हाथ जोड़कर कहती है कि पिताजी, मैं बचूं या न बचूं, इस अजगरको मत मारो और इसतरह उसने अजगरको अभयदान दिया। उस अभयदान संयमके फलस्वरूप वह अगले जन्ममें विशल्याके रूपमें आई और उसको ऐसी प्रतिभा मिली। उस दान व संयमका ऐसा प्रताप हुआ कि जो

कोई उसके स्नानका पानी अपने भयङ्कर रोग युक्त शरीर पर डाले तो उसका रोग दूर होजाये। यह अभयदान व संयमका ही प्रताप है। हमारे स्वयंके अन्दर भी यह बात विद्यमान है। इसीलिये कहा है कि एक संयमकी रक्षा करो। संयमसे ही मनुष्य जीवनकी शोभा है। संयमके विना मनुष्य-जीवन बेकार है। कर्मबन्ध भावोंसे होते हैं। जिसप्रकारके हमारे भाव होते हैं उसी प्रकारका कर्म बंध जाता है। बाह्य प्रवृत्तियोंसे कर्मबंध नहीं होता। यदि अन्तरङ्ग भावपूर्वक वस्तुओंका त्याग नहीं तब मौका पड़ेगा तो खा लोगे, जिनके त्याग नहीं है और संयम नहीं है. उनके ऐसी बात पैदा होती है। ये विषयभोग इस भवमें ही नाना दुर्गति करते हैं फिर इन विषयोंके आसक्तोंका क्या ठिकाना रहेगा सर्वज्ञ जानते हैं।

एक राजा था। उसका नौकर रोज उसका बिस्तर लगाया करता था। एक दिन वह सोचने लगा कि रोजाना तो राजा ही इनपर सोया करता है आज मैं भी सोकर देखूं कि कैसा लगता है। वह सोगया। बिस्तर गुदगुदा था उसे फौरन नींद आगई। इतनेमें राजा आया तो उसने नौकरको सोते देखा। उसने उसको जगाया और बैंतसे मारा कि तू मेरे बिस्तरपर सोता है ? बैंतसे पिटकर भी वह नौकर हंसतारहा। राजाने पूछा कि तू हंस क्यों रहा

है। तो बोला महाराज इन बढ़िया बिस्तरोंपर एक दिन सोनेसे ही मैं बेंतोंसे पिटरहा हूँ, परन्तु आप तो रोज रोज ही पलङ्गपर सोते रहते हैं तो आपको क्या सज़ा मिलेगी? मुझसे भी ज्यादह आपकी सज़ा होगी यही सोचकर हंस रहा हूँ। इसीतरह जो अपने ज्ञानस्वभावका विचार नहीं करता, उसकी क्या गति होगी? देखो भैया! सप्तम नरक का नारकी तो संयम उत्पन्न करलेता है किन्तु भोक्तासक्त मनुष्य नहीं। यह सब ज्ञानादि वैभव संयमके पालनेसे ही सार्थक हैं। संयमभावमें सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान अपने आप गर्भित होजाते हैं। यह मनुष्यभव ही बिना संयमके व्यर्थ है। जिसके संयम होता है उसको सबकुछ मिलता है अर्थात् आत्म-संयमीको कुछ चाह ही नहीं और जहां चाह नहीं वहाँ सबकुछ मिला ही समझो। इस मनुष्यभवके लिये इन्द्र और देवता भी तरसते हैं, ऐसे मनुष्यभवको पाकर व्यर्थ न खोने देना चाहिये। जिस पर्यायको इन्द्र भी तरसते हैं उसको क्यों व्यर्थ खोरहे हो और देवोंके मुकाबलेमें मनुष्यभवको जो विशेषता है वह संयमही के कारण तो है। संयमके बिना यह जीव दुर्गतिमें पड़जाता है। जितनी जल्दी संयम धारण करसको उतनाही अच्छा है और जितनी देर करोगे उतना ही बुरा है।

एक भंगिन मलका टोकरा अपने सिरपर लिये जाती

थी। एक आदमीने उसको एक अच्छासा तोलिया दिया कि ले इसको ढककर लेजाया कर ताकि दूसरोंको तकलीफ़ तो न हो। उसने ऐसा ही किया। वह ले जारही थी तो रास्तेमें तीन आदमी यह सोचकर पीछे लगे कि अच्छे तोलियेसे ढका न जाने इस टोकरेमें क्या है? वे तीनों उसके पीछे होलिये। उस भंगिनने कहा कि इसमें कुछ नहीं है तुम क्यों मेरे पीछे लगे हो? एक तो कहते ही लौट गया और बाकी दो चलते ही रहे। फिर भंगिनने बहुत समझाया तो दूसरा उसे देखकर लौट गया, परन्तु तीसरा तो चलता ही रहा। भंगिनने फिर उसे बहुत समझाया, परन्तु वह न माना और कहने लगा कि तुम झूठ बोलती हो, जरा जांच करलें तो मानें। तब भंगिनने बताया तो वह फिर उसे सूंघकर लौटा। इसीतरह यह शरीर मल का टोकरा है। यह मल इस चमड़ेके तोलियेसे ढका है। विषयकषायवश मोही इसके पीछे लगे भागरहे हैं। ज्ञानी कहरहे हैं क्यों पीछे लगरहे हो। यह तो मलका टोकरा है। कुछ तो कहते ही समझगये। कुछ पीछे लगेही रहे। ज्ञानीने फिर समझाया तो कुछ बार बार समझानेपर लौट गये। बाकी बचे कहते हैं कि हम तो इसे देखेंगे ही, दिखा भी दिया फिर भी नहीं हटते, शरीरके पोषणमें लगे रहते हैं न्याय अन्याय कुछ नहीं देखते परन्तु फिर भी उन्हें

मरण समय इसको छोड़ना ही पड़ता है। अच्छा है जल्दी ही लौट लो। चाहे भोगकर ही लौटलो, लौटना तुम्हें इस शरीरसे अवश्य पड़ेगा। अर्थात् शरीरको अवश्यही छोड़ना पड़ेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि शरीरको खाना पीना भी न दो और इसको इतना कृश करदो कि कलके मरते आज मर जाओ। नहीं भाई यह तो आत्म-हत्या है महा पाप है। शरीरको खिलाओ भी पिलाओ भी पर जीनेके लिये, न कि जीओ खानेके लिये। शरीरसे ममत्व इतना न करो कि दिन रात इसको ही संवारने सजानेमें लगेरहो। भैया इसे तो थोड़ासा भोजन देकर आत्म-कल्याणका काम लो। तपस्या करो। संयम धारण करो तब यही अपवित्र शरीर तुम्हारे कल्याणमें साधक होजायेगा। इसलिये शरीर से ममत्व छोड़कर जल्दी ही संयमको धारण करो। संयम के विना सर्व आयु व्यर्थ ही है। इसलिये जितनी जल्दी बाह्य पदार्थोंसे मुक्ति पाओ उतना ही अच्छा है क्योंकि देहकी शिथिलता होनेपर फिर चित्त प्रायः अस्थिर हो जाता है।

एक किंवदन्ती है कि ब्रह्माने ४ जीव बनाये। एक उल्लू, एक कुत्ता, एक गधा और एक आदमी। चारोंके लिये ४०–४० वर्षकी आयु सुरक्षित रक्खी। उल्लूको पैदा करते समय उससे कहा कि जाओ हमने तुम्हें पैदा

उल्लूकी ज़िन्दगी आई और वह अन्धा होगया। अब उसको कहींसे रोटी मिलजाये तो खाले न मिले तो भूखा ही बैठा रहे। किसीका भी स्नेह नहीं रहता। इसप्रकारकी कहानी बताई गई है। इससे यह शिक्षा लेना कि मनुष्य-भवमें जितने जल्दी धर्मकी ओर लग जाओ, लाभ है।

अभीसे चेत जाओ। पता नहीं आगे क्या हो? न जाने किस समय इस भवको छोड़ देना पड़े। आत्म-प्रतीति सहित स्वस्थिरतारूप उत्तमसंयम धर्मको धारण करो। इस संयमसे ही आत्माकी शुद्धि होगी। मनुष्यको इस भव और परभवमें संयम ही सहायक है। इसको धारण करके संसाररूपी समुद्रसे तिरनेका प्रयत्न करो।

: सात :

उत्तम तप धर्म

शुद्ध आत्मस्वभावकी रुचिपूर्वक इच्छाओंका निरोध होना, चैतन्यस्वभावमें प्रतपन करना सो तप है। मनुष्य-भवकी सबसे बड़ी विशेषता तप है। जो अन्य जगह नहीं होसकती, जिसे न तिर्यञ्च करसकते हैं और न नारकी देव ही करसकते हैं। तपका अधिकार मनुष्यको है। तप क्या

चीज है ? इच्छाओंको रोकना ही तप है। देवोंको जिस समय भूखप्यास लगती है तो उनके मुंहसे अमृत झड़ता है जिससे उनकी भूखप्यास दबजाती है। देव इच्छाओंका दमन नहीं करसकते। इच्छाओंका दमन करना मानव-जीवनमें ही सम्भव है।

सबसे विशेष भव तो मनुष्यका है परन्तु जैसे ही उसको बाह्यविकार आया वैसे ही उन इन्द्रियोंको संभालने लगादिया। उनके विषयोंको भोगनेमें लगादिया तब क्या किया दुर्गतिका पात्र ही हुआ। पर्यायबुद्धि सर्व दुखोंकी मूल है। अन्य बुद्धियोंकी तो बात दूर रही यदि भक्ति आदि शुभरागमें भी आत्मीय बुद्धि हुई कि संसारकी वृद्धिफल रहा। स्वानुभवी अन्तरात्माके कदाचित् राग-विपाकवश बाह्यप्रवृत्ति होती है तो भक्ति आदि रूप होती है। इसीको कहते हैं व्यवहारिक धर्म। तपका मतलब है किसी चीजकी इच्छा न करना। विषयवासनाओंसे दूर रहना ही तप है। तप दो प्रकारका होता है, आन्तरिक और बाह्य। उस तपमें जबकि सम्यग्दर्शन न होनेपर जो लोग तपस्या करते हैं उनकी कई तरहकी विडम्बनायें हो जाती हैं। बाह्यतप भी तप तभी कहलाते हैं जबकि आन्तरिक तप भी चलरहा हो। कभी बाह्यतप पहिले होता है और उस प्रसंगमें आन्तरिक तप हो इसलिये बाह्यतप

बिल्कुल व्यर्थ न समझना। अनशन क्यों किया जाता है उसका क्या प्रयोजन है ?

पहले भोजन करते समय अनेक प्रकारके राग पैदा होते हैं। उपवास करके देखो आत्मकल्याण की भावना होती है या नहीं ! तथा जो स्वादके लोभको तज देता है सुखसातामें स्वेच्छासे उसके अन्य विषयोंका अभाव ही तो होगा। ज्ञानस्वभावमें लीन रहना ही तपस्या है ऐसे नहीं जैसे कि एक घटना है कि—एक भाईजी थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हरे सागको छौंकना नहीं, वह एकदिन उपवास किया करते थे और एकदिन खाते थे। जिसदिन वह खाते थे तो सारा दिन प्रवन्ध व खानेमें ही व्यतीत होजाता था। एक दिन जब भोजनका समय था तो हरी साग छौंकनेको रखदी और प्रतीक्षा करने लगे कि यदि कोई इधरसे निकले तो साग छुकवालें। इतनेमें इधरसे गुरुजी निकले, भाईजीने उनसे कहा कि पंडितजी, यह साग छौंक दीजिये। पंडितजीने कहा मैं साग छौंक दूंगा, पर यह कहकर कि साग छौंकनेमें जो पाप लगे वह तुम्हें लगे। इसपर भाईजीने कहा कि ना भाई ना ऐसा न करना। पर पंडितजीने जब साग छौंका तो यह कहदिया कि इसका जो पाप लगे वह इन्हींको लगे। परन्तु पंडितजी यह अच्छीतरह जानते थे कि कहनेसे पाप तो नहीं लगता,

पाप तो भावोंसे है। जब इनकी इच्छा छुकवानेकी है और विकल्पबुद्धि है तो यहाँ तो कर्मबंध है ही। तप तो वह है जहाँ सम्यग्दर्शन हो और उसके विषयमें झुकाव हो। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर जो तप होता है उसमें कष्टकी कोई बात नहीं। तपमें तो आनन्द रहता है। पूज्यपाद स्वामीजीने कहा है कि:—

> आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं।
> न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥

जिसके अन्तर्दृष्टि है वह बाह्यदुखोंमें अचेतनवत् है। वह खेद नहीं करता, उसके आनन्द ही झरता है वही आनन्द कर्मनिर्जरा करता है। अनशनमें वह शक्ति नहीं जो कही गयी है, वह तो आहारका वियोग है। परन्तु वहां विषयेच्छाका अभाव है वह तप है। विषयप्रवृत्ति नियमसे आकुलताकी द्योतिका है। विषयोंमें आकुलता प्रकट है। सुनने और देखनेकी इच्छा तथा नई २ इच्छायें क्यों उत्पन्न होती हैं? देखो खानेकी आकुलता, एक ग्रास मुखमें है एक हाथमें है और साथ कल्पना करते हैं अब मिठाई खाऊंगा फिर नमकीन खाऊंगा। फिर खानेके युद्ध से निपटे तो सुगंध, रम्यावलोकन, रागश्रवण आदि इच्छायें होजाती हैं। अहो विषयसम्पर्क। दुःख ही है, आकुलता ही है।

जहां आत्मा अपने सहज स्वभावमें लीन होती है वहां इसप्रकारके विचार व दुःख नहीं है, आनन्द ही है। टुनदि समृद्धौ एक धातु है जिससे अर्थ होता है चारों ओर आनन्द, चारों ओर समृद्धि बनी रहे। रागद्वेष करके यह जीव तो खाली होरहे। आत्म रक्षा उसकी है जिससे शांति ज्ञानमय आत्माके स्वभावका आलम्बन होता है। परदृष्टि से ज्ञान और शान्तिका घात होता है जिसकी यह श्रद्धा है उसमें यह शक्ति है कि कर्मोंको दूर करसकता है। न सांसारिक सुखमें शक्ति है न दुःखमें कि अनाकुलता रख सके फिर मोहसे विषयोंको अपनाना उचित नहीं। परन्तु क्या करें मोही जिसने अपने स्वभावकी परख नहीं पाई, विषयोंके संस्कारमें ही पालना पाई वह कैसे उसे छोड़ सकता है।

उदाहरण है कि एक धींवरकी लड़की और एक माली की लड़की बचपनसे ही बहुत पक्की सहेलियां थीं। जब बड़ी हुई तो एक कहीं और ब्याही गई और एक कहीं और। एकदिन धींवरकी लड़की मछलियां बेचते बेचते वहीं पहुंच गई जहां उसकी सहेली रहती थी। उसे वहां पर मछलियां बेचते हुए शाम होगई, उसने सोचा कि अपनी सहेलीके यहां विश्राम करलिया जाये। वह अपनी सहेलीके घर गई। उसकी सहेली उसे देखकर बड़ी प्रसन्न

हुई। उसने धींवरिनका स्वागत किया और रातको सोनेके लिये बिस्तर लगादिया और उसके ऊपर फूल बिछादिये। तो जब वह बिस्तरमें लेटी तो उसे मारे फूलोंकी सुगन्ध के नींद न आई और वह इधर उधर करवट पलटती रही। जब मालीकी लड़कीने उसे देखा कि इसे तो नींद नहीं आरही है तो उसने उससे कहा कि बहन क्या बात है जो तुम्हें नींद नहीं आरही है? इसपर धींवरकी लड़कीने कहा बहन मुझे तो मारे फूलोंकी सुगन्धके नींद नहीं आरही। तो उसने पूछा क्या किया जाये? इसपर धींवरकी लड़की ने उससे कहा कि फूलोंको हटादो। फूल हटा दिये फिर भी नींद न आई। तब कहा मेरे पास मेरी मछलियोंका टोकरा लाकर रखदो और उसमें थोड़ा पानी सींच दो. जब मुझे मछलियोंकी सुगन्ध आयेगी तो मुझे नींद आ जायेगी। मालीकी लड़कीने ऐसा ही किया। तो भाई! कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे मछलीमें बसनेवालोंको फूल नहीं सुहाते वैसे ही विषयोंमें बसनेपर स्वानुभव कैसे सुहाये। अच्छी सङ्गतिसे मनुष्य बहुत देरमें लाभ पासकता है जल्दी नहीं तथापि वह लाभ अन्तिम पूर्ण अवस्थामें पहुंचानेवाला होगा। "भोग तजना शूरोंका काम। भोगना भोग बड़ा आसान।"

यह इच्छानुरोध तबतक नहीं होसकता जबतक कोई

स्वभावका अनुभव न करलें। स्वभावके अनुभवके बाद उसका स्मरण रहता है। उसी ओर परिणाम रहा करता है उस स्थितिमें इच्छाका निरोध सहज होजाता है यह संसारी जीव बालक है इसे तो खिलौनेसे राग है। जिसने अपना आन्तरिक खिलौना नहीं देखा वह बाह्य पदार्थ विषयरूपी खिलौनेसे कैसे चित्त हटा पावेगा। इसे तो खिलौना चाहिये, चाहे स्वकीय मिले या परकीय। परकीय खिलौनेमें व्याकुलता ही व्याकुलता है स्वकीय खिलौनेमें सत्य शान्ति है।

हम निजस्वभावको भूलकर जगत्में इतने भटके कि ८४ लाख योनियोंमें नानारूप रखे उनको यह जीव जब जान लेता है कि यह मोहस्वरूप है। वह पुन्योदयसे संयुक्त सम्पत्तिमें कुछ भी हित बुद्धि नहीं करता। सम्पदा का संयोग आत्माकी शान्ति करतूत नहीं। वह पुन्यके निमित्तपर उपस्थित है। सम्पदासे शान्ति नहीं। तृष्णा करके अपनेको भोगोंमें लगाना विषयोंमें फंसाना अपने आपपर महान् अन्याय करना है। सद्गृहस्थ बनकर यथा शक्ति तपका लाभ गृहमें भी पासकते हैं।

जो पर्याप्त सम्पत्ति होनेपर भी सात्विक रहन-सहन रखता और निरन्तर अविकारी स्वभावका ध्यान रखता है वह गृहमें भी तप करता है। मनुष्य होनेका लाभ तपमें

है, इच्छानिरोधमें है। मनुष्यके समान अन्य कोई उत्तम पर्याय नहीं है। इसको पाकर विषयेच्छाका दास होना अपना सुखका मार्ग रोक देना है। जब तीर्थंकर देव विरक्त होते हैं तब उन्हें वनमें लेजानेको इन्द्र अपनी पुरानी आदतके अनुसार पालकीमें बैठाकर उठाना चाहते हैं तो मनुष्य रोक देते हैं। भाई तुम इस पालकीमें हाथ न लगावो। यहां तुम्हारा अधिकार नहीं है। इन्द्र बोला मैंने गर्भमें रत्न वर्षाये। जन्मोत्सवमें मेरुपर अभिषेक किया, मुझे अधिकार कैसे नहीं। निर्णयकेलिये एक वृद्ध को बैठाया तब उसने खूब सोच विचारकर यह निर्णय किया कि भाइयो भगवान्की पालकी वह उठा सकता है जो भगवान्के साथ भगवान् जैसा संयमको धारण करसके। यह बात सुनकर मनुष्य बड़े प्रसन्न हुए। तब इन्द्र बोला कि हे मनुष्यों मेरी इन्द्रत्वकी सारी सम्पत्ति लेलो और इसके बदले मनुष्यत्व देदो। परन्तु इसकी इस आशाकी पूर्ति वहां कैसे होसकती थी। वह रोता ही रहा, मनुष्य भवको ललचाता ही रहा। ऐसे अमूल्य नर रत्नको, क्षणिक पराधीन विषयास्वादमें गमा देना महती मूर्खता है। जगत्की सभी पदार्थ स्वतन्त्र हैं। मैं भी स्वतन्त्र ध्रुव चैतन्यमय वस्तु हूँ मेरा विश्वके साथ मात्र ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है। स्वस्वामि सम्बन्ध नहीं। यह तो केवल

जाननेमें आत्मयवस काम होगया। जानलो आगे मत वढ़ो। इसप्रकार बाह्यसे सर्वथा हटकर निज चैतन्यस्वभाव में उत्तम तप है यही सम्यग्ज्ञान है।

ऐसे ही समाधिरूप भावमें मरण होना मंगल है। भोगोंमें ही जिनका जीवनमरण है वे संसारको ही वढ़ाते हैं। चैतन्यस्वभावको आलम्वन करतेहुए जिनका जीवन चलरहा है अथवा आयुक्षय होरहा है वे आगे जन्ममरण के पात्र नहीं होते हैं। शेष अल्पभव भी निराकुलतासे व्यतीत होजाते हैं फिर शाश्वत आनन्दमय रहते हैं।

जगत गोरखधन्धा है। इसकी चाहमें उलझनकी वढ़वारी है व चाहसे दूर रहकर अपने स्वभावमें प्रतपन करनेसे अनन्त आनन्दका आविर्भाव है। इस सर्व सुखका मूल सम्यग्दर्शन है। जिसे अन्तरंग वहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रुचि हटगई है उसके ये परिग्रह कवतक लद सकते हैं। अतः जहाँ शुद्धआत्माके स्वभावकी रुचि पुरःसर अन्तरंग १४ प्रकारके और वहिरंग १० प्रकारके परिग्रहों का जहां अभाव होजाता है उस परिणामको उत्तम तप कहते हैं। यह तप वहां ही प्रगट होता है जहां निर्ग्रन्थता है। उन परिग्रहोंसे त्रैकालिक चैतन्यस्वभावी निज आत्मा का क्या सम्वन्ध है? यह कुछ न आपके साथ आया न साथ जावेगा और जवतक है न आपकी परिणतिसे

परिणमता है। सबसे अधिक ग्रन्थिदेहमें होती है। वह देह भी क्या है? जड़ भिन्न प्रवेश करने और गलनेवाले अणुवोंका पुञ्ज है। यह आत्मा नहीं। अहो जिसे अज्ञानी समझते हैं न वह अन्तरङ्ग आत्मा है न बहिरङ्ग आत्मा है। मैं सर्व दृष्ट अदृष्ट स्कन्धसे भिन्न हूँ, धनवैभवसे न्यारा हूँ, परिवार आदि कहे जानेवाले मूर्त शक्लसे पृथक् हूं। मेरे समान जातिवाले सभी अन्य चेतनसे पृथक् हूं। मैं किसी भी परवस्तुका परिणमन नहीं करता। मेरे करनेको बाह्यमें कुछ काम भी नहीं है। इसप्रकारके परिणामोंसे प्रेरित होकर परद्रव्यसे हटकर व सर्व विकल्पोंको समाप्त करके निज चैतन्यस्वभावमें स्थिर होना उत्तमतप है। इस उत्तमतपमें प्रवर्तमान साधुवृन्द विकराल गुफाओं में बसते हुए आनन्दमग्न हैं। अनेक उपसर्ग उनके शृङ्गार हैं, समिति गुप्ति उनका व्यापार है। सर्व आरम्भ परिग्रह से अत्यन्त विरक्त हैं। भोजनका भी रंच आरम्भ नहीं है। भिक्षावृत्तिसे पाणिमात्र अहारी हैं। परम विवेकज्ञानी हैं। अहो इस उत्तमतप धर्ममें कषायोंको स्थान नहीं मिलता उसका फल केवल ज्ञान है। अविनाशी सुख है। इस धर्ममें भी देखो सभी धर्मोंकी महत्ताएँ स्वयं ही सहज हैं। हे उत्तमतपधर्म सदा जयवन्त रहो। तेरे ही प्रतापसे विषयकषायके भयङ्कर रोग दूर होजाते हैं।

विशुद्धज्ञानदेह चमक उठता है। अहो भव्य बन्धुओं यह नररत्न सर्व पदार्थोंमें रत्न है इसे विषयकषायके वहकावेमें मत डालना। अपने स्वभावकी उपासनासे अपना उद्धार करलेना। अन्यथा सिवाय पछतानेके या वेहोश बने रहने के संसार क्लेश सहनेके कुछ भी लाभ नहीं होगा। सर्व शक्तियोंके अभेद स्वभावमय स्वतः सिद्धआत्मा विराजमान इसके दर्शन करो। तप वहां ही होता है जहां आत्माकी यथार्थ पहिचान होचुकी। आत्म स्वभाव समझना बहुत सरल है इसमें परिश्रमकी आवश्यकता नहीं किन्तु परिश्रम के त्यागकी आवश्यकता है। यह विपरीत परिश्रम पक्षके कारण है। यदि कोई मनुष्य अपनेको एक वार इस परिस्थितिमें ला देवें कि मैं तो न वैष्णव हूँ, न हिन्दू हूँ, न जैन हूँ, न धनपति हूँ, न गरीब हूँ, न शास्त्रज्ञानी हूँ, न मूर्ख हूं, सभी पर्यायें हैं। मैं तो आत्मा हूं। आत्माका रिश्ता आत्मासे जोड़ देवें, तब आत्मस्वभाव जो अनाकुल सुखमय ज्ञानका स्वानुभव है वह होजावेगा। बस आत्म-स्वभावके पहिचान होनेपर करने योग्य सब करलिया अब उस ज्ञानीकी किसी बाह्यमें रति नहीं होती और निज चैतन्यस्वभाव जो अनादि अनन्त स्वतःसिद्ध है उसकी ओर झुकाव होता है। इस ही चैतन्यस्वभावमें बने रहना उत्तम तप है।

: आठ :

उत्तम त्याग धर्म

आज उत्तम त्यागका दिन है। उत्तम त्याग-सम्यक् दर्शन सहित, अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वभावकी प्रतीतिपूर्वक परवस्तुके सम्बन्धमें ग्रहण और त्याग दोनोंके विकल्पोंका त्याग किये रहनेके स्वभाववाले ज्ञानकी विशुद्ध वृत्तिसे वर्तना उत्तम त्याग है। जगत्का कोई पदार्थ मेरा नहीं, मेरा स्वरूप ही मेरा है, परपदार्थ मुझसे भिन्न ही हैं। फिर मैं उन पदार्थोंको छोड़ूं क्या? वे तो अपने आप ही छूटे हुए हैं। हां, यह मेरा है, इसप्रकारका विकल्प जो है उसको छोड़ना है और उसको त्यागना ही उत्तम त्याग है। जिनके परपदार्थ मेरे हैं यह विकल्प नहीं रहते, रागादि भावसे भिन्न ज्ञानभावकी जिनको दृष्टि रहती है, ऐसे ज्ञानी के बाह्य पदार्थोंका त्याग स्वयमेव ही होजाता है। मुनियों को कमण्डल और पीछी ज्ञानीश्रावक देता है, परन्तु उन साधु जनोंके उनमें भी राग नहीं होता। देनेवाला श्रावक भी इस श्रद्धासे भरा होता है कि मैं बाह्य वस्तुका देनेवाला नहीं हूं। मैं आत्मा तो ज्ञानमय हूं? ज्ञानके अतिरिक्त और मेरा है ही क्या? मैं क्या चीज़ दे सकता हूं? ऐसी

श्रद्धावाला श्रावक तीर्थ (व्यवहार धर्म) की रक्षाके वास्ते उनके वाह्य साधनकेलिये जो प्रयत्न करता है, जो वाह्य वस्तुका त्याग करता है, उसे भी उपचारसे त्याग कहते हैं। वस्तुतः तो जगत्‌का साक्षी रहना, मात्र ज्ञाता दृष्टा वना रहना, इसे ही उत्तमत्याग कहते हैं। यह आत्मा तो सदैव किसी न किसी स्थितिमें रहेगा ही। ऐसी आत्मा विषयकषायोंके दुःख न उठाये, जो ऐसा चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे आत्म-ज्ञानपूर्वक आत्मस्वभावमें स्थिर होने का प्रयत्न करें और क्योंकि उपयोग सदैव आत्मस्थ रहना असम्भव है। अतः वाह्यमें जब कार्यमें लगना ही पड़ता है तब उसे चाहिये कि वह चारों प्रकारके संघ, मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका, इनके आहार औषधि, अभय व शास्त्र चारों प्रकारका दान दे। धर्म जीता है तो दान पद्धतिके बलपर जीता है। गृहस्थको पूजा और दान दो चीज करना बताया। यदि यह भी नहीं निभते तो उसके गृहस्थ बने रहनेमें क्या रहा? यह परलोक सुधारने वालों केलिये आवश्यक बात है कि वे चारों प्रकारका दान दें।

दान देना भी धर्मका एक अङ्ग है। किन्तु जिसे किसी वस्तुका दान देना है, दान देनेमें जो विकल्प आता है कि मैं दान देरहा हूँ वह राग रूप है और राग रूप

होनेसे वह धर्मका भाव नहीं है। अतः इसे देना वही उचित कहलाता है जहाँ कि मोहका भी त्याग हो। धन के त्यागका नाम भी उत्तम त्याग बताया, यदि धनका त्याग करते समय उसके मोहका भी त्याग हो। पात्र-सुपात्रकेलिये हमेशा ऐसा उत्तमत्याग करना चाहिये। उत्तमत्याग ऐसा है जो परभवमें सुखी होनेके वास्ते पाथेय (कलेवा) है। धनकी रक्षा भी करो और पुण्यका उदय नहीं है तो वह धन अपने हाथमें नहीं रहसकता। इसलिये त्यागधर्मका पालन करना चाहिये।

दान देनेसे आवागमनके विनाशकी सुमति होती है। उत्तमत्यागसे संसारसमुद्रको पार करलिया जाता है। एक वार एक साधु ऐसे ही उपदेश देरहा था कि एक सेठजी एक साधूके साथ रहा करते थे। एक दिन वह साधु एक नदी किनारे गया, वहां एक नाविक था, उससे उसने कहा कि मुझे उस पार करदे। नाविकने कहा कि उस पार पहुंचनेके दो आने लगेंगे। साधूके पास कुछ नहीं था, अतः वह उस पार न जाकर इस पार ही सामायिक करने बैठगया। उसने सोचा कि उस पार नहीं तो इस पार ही सही। इतनेमें वे सेठजी भी आगये। उन्होंने पूछा कि महाराज उस पार सामायिक करनेकेलिये जानेको तयार थे फिर आप इस पार ही सामायिक करने कैसे बैठगये?

साधू बोला कि हमसे नाविक दो आने मांगता था, हमारे पास दो आने थे नहीं, हमने सोचा उस पार न सही इस पार ही सही। तब सेठने कहा कि चलिये उस पार ही चलकर बैठेंगे और नाविकको दोनोंके पैसे देकर उस पार लेगया। तब सेठने पूछा कि महाराज, आपने तो उपदेश दिया था कि त्यागसे तो संसारसमुद्र पार करलिया जाता है, परन्तु आप तो इस नदीको ही पार न करसके। तब साधू बोला कि यह नदी जो पार कीगई है वह त्याग ही से तो की है। दोनोंकेलिये चार आनेका त्याग नहीं करते तो कैसे पार होजाते।

देखो लौकिक काम भी त्याग बिना नहीं होते। इसलिये यदि हम रागादिका त्याग करेंगे तो संसारसमुद्र से पार होजायेंगे। मनुष्य आया तो कुछ नहीं लाया, जायेगा तो कुछ साथ नहीं लेजायेगा; जो कुछ यहां पाया है वह यहीं रहजायेगा। बीच ही में तो सबकुछ मिला था और बीच ही में नष्ट होजायेगा। अतः इसका जितना भी सदुपयोग होसके करलेना चाहिये। इस सबसे निकलना तो ही, सबकुछ छोड़कर जाना तो है ही फिर ऐसा अवसर आया है कि हमारे पास चार पैसे हैं तो इसका उत्तम लाभ उठायें। क्यों नहीं इस सबको दानके उपयोग में लावें, छोड़ना वैसे भी है। भैय्या, धनकी तो तीन ही

गति बताई है—या तो खा पीलो या दान करलो, नहीं तो नाश होगा ही। लौकिक दृष्टिसे भी दान देना शोभा, जायदादकी तरह है, सेठ हुकमचन्दजी ने एक करोड़का दान देदिया। इस दानसे तो यह देखा जारहा है कि उनका यह दान उनकी जायदादमें ही शामिल होगया। लोगोंमें यश है कि सेठजीने एक करोड़का दान किया तो ऐसी उक्तिका लक्ष्य बनना उनकी घर जायदादसे भी बड़ी जायदाद है। वह दान करना मानो इसी भवमें अपनी जायदाद बनाना व यश बढ़ाना है और परलोकमें दानके फलसे उत्तम फल होगा ही। दानसे आत्मशत्रु भी पराजित होजाते हैं। जो धनमें ममत्व था, राग था वह दान देनेसे नाश होजाता है। यह बड़ा भारी लाभ है और भोग भूमिका सुख मिलता है।

एक गरीब आदमी था, दाने दानेका मुहताज। उसकी ऐसी प्रकृति थी कि उसको जो पैसा मिलजाता उसे वह भिखारियोंको देदेता। वह कवि था। उसकी पत्निने कहा कि हम इतने दुःख पारहे हैं, जाओ राजा भोजके दरबारमें एक कविता बनाकर लेजाओ। वह कवियोंका बड़ा आदर करता था और कविता सुनानेवालों को लाखों रुपया दान देता है। वह दरबारमें कविता लेगया और सुनाने लगा—

कुमुद्वनमपश्रि श्रीमद् भोजखंडं
त्यजति मुदमूलूकः प्रीतिमाश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधि लसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

जिसका भावार्थ यह है कि कर्मका फल बड़ा विचित्र है । प्रभातकाल होते ही तो कमलिनियोंका वन तो शोभा-रहित होगया और कमलोंका वन शोभासहित होगया । हे प्रभात, तेरे आते ही एकका नाश होरहा और दूसरेका उदय होरहा है । सुबह होते ही उल्लूका हर्ष नष्ट होगया और चकवा सुखी होगया । प्रभात होते ही सूर्यका उदय होरहा है और चन्द्रमा अस्तको प्राप्त होरहा है । कर्मके प्रेरे हुए प्राणीका बड़ा विचित्र स्वभाव है ।

इस कवितापर प्रसन्न होकर राजाने उसको एक लाख रुपया दिया । राजदरबारसे चला तो भिखारियोंने उसे घेरलिया, क्योंकि वे जानते थे कि वह जो कुछ धन उसके पास होता है दान देदेता है । आदत ही ऐसी होनेके कारण वह उन्हें दान देता गया और आगे बढ़ता गया और इसप्रकार बीचमें ही सब रुपया समाप्त करदिया । जब वह घर पहुंचा तो उसके चित्तपर उदासी छारही थी । स्त्रीने पूछा कि आप उदास क्यों हैं, राजाने इनाम नहीं

दिया क्या ? वह बोला कि इनाम तो मिला था, परन्तु मैं इसलिये दुखी हूँ कि—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यते ॥

अर्थात् दरिद्रताका संताप तो मैं आसानीसे नष्ट कर दूंगा और संतोष करलूंगा, परन्तु याचक लोग आशा लेलेकर मेरे पास आते हैं और उनकी पूर्ति मैं नहीं कर सकता। उनकी आशाका इसप्रकार घात होजानेसे मेरे मनमें आघात पैदा होगया है, उसे कैसे शान्त करूं ?

इसीतरह बड़े २ पुरुषोंको बाह्य-परिग्रहोंमें मूर्च्छा नहीं होती और यही कारण है कि इतने तीर्थ और इतने मंदिर हमें दिखाई देते हैं। जिनकी उदात्त प्रकृति होती है वे जो भी बड़े २ कार्य करते हैं आसानीसे करसकते हैं। दान देनेका बड़ा ही उत्तम फल होता है। दान देकर विनय प्रकट करना चाहिये। दान दिया और लेनेवालेपर अकड़ गये तो सब फल मटियामेट होजाता है। किसीको खाना खिलाया और कहदिया कि तेरे बापने भी कभी ऐसा खाना खाया है, तो खाना खिलाना सब व्यर्थ होगया। प्रेमपूर्वक शुभवचनोंसे दान देना चाहिये। अभयदान बड़ा दान होता है। प्राणियोंको भय न हो, वे निर्भय

में आत्मस्वरूपके संभालका अवसर पासकें। सबसे बड़ा ज्ञानदान होता है। परपदार्थोंसे मोहभावको दूर करके आत्माके स्वरूपको पहिचानकर जो अनन्त संसारका विनाश करदेता है उस ज्ञानदानके बराबर तो दान ही क्या है? आजके युगमें ज्ञानदानकी प्रचुरता होनी चाहिये नहीं तो वह समय शीघ्र आयेगा कि जैनी लोग आरामसे नहीं रहसकते। हम लोगोंको अपना साहित्यप्रचार करके दुनियांको दिखाना है। आज अन्य लोगोंने अपना साहित्यप्रचार करके दुनियांपर अपना रंग जमा रखा है, ऐसी हालतमें यदि कुछ भी नहीं करसके तो बहुत दिनों के बाद खतरनाक हालत होसकती है। आज साहित्य-प्रचार और शिक्षादानकी आवश्यकता है। आज समय यह है कि विदेशोंमें भी हमारा उत्तमसाहित्यका प्रचार है और जैन-साहित्य उनके समझमें आया है। एकबार सुनते ही वे झट श्रद्धालु होजाते हैं। यही कारण है कि विलायत जैसी जगहोंमें जैनधर्मके केन्द्र बनगये, जैनसमाज बनगये। अंग्रेज़ों, जर्मनोंमें भी जैनसमाज होगये। विदेशों परभी साहित्यप्रचारका प्रभाव है, जिससे सारा जैनसमाज सुखी रहसकता है। ज्ञानदानमें ही शिक्षादान गर्भित है। धर्मशिक्षा बच्चोंको पढ़ानेकी बहुत आवश्यकता है ताकि उनको जाननेवाले बनें और सदा उसकी रक्षा करसकें।

आजकल लोग अध्ययनका प्रयत्न नहीं करते और आचार्योंकी व्यवहारानभिज्ञता आदि बताते हैं उन्हें विद्या का यत्न करना था। एक आदमी जो संस्कृत नहीं जानता था शास्त्र भण्डारमें गया और शास्त्र निकालकर पढ़ने लगा, परन्तु पढ़ नहीं सका, दूसरा निकाला तो उसे भी नहीं पढ़ सका। इसप्रकार जब वह कुछ भी नहीं पढ़सका तो कहने लगा कि हमारा इसमें कोई दोष नहीं है, इन शास्त्रोंका ही दोष है जो हमारे पढ़नेमें नहीं आते। अपना दोष नहीं बताया कि मुझे ही इनकी शिक्षा नहीं दी गई। इसीप्रकार आचार्योंने जो कुछ कहा है बिल्कुल सत्य कहा है परन्तु हम लोग उसको जाननेका तो प्रयत्न करते नहीं और दोष मढ़ते हैं आचार्योंके सिर कि उन्हें व्यवहारका ज्ञान ही नहीं था। तभी तो उन्होंने ऐसी ऐसी कठिन बातें लिखदीं जो आजकल पालन भी नहीं होसकतीं। यदि संसारके जीवोंके सन्तापको दूर करना है तो साहित्यप्रचार और शिक्षादान, इन दो बातोंपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। दानोंमें सर्वप्रधान दान ज्ञानदान है। जो सम्यक्दर्शन और रत्नत्रय की आराधना करे अर्थात् उन्हें ग्रहण करे और शरीरसे ममत्वरहित होकर आत्म-भाव पाये, यह उत्तमत्याग है।

सबसे बड़ा दान ज्ञानदान है। जहाँ कर्त्तव्य बुद्धि

लगी हुई है कि मैंने यह किया, मैं उसको सुखी करता हूं, मैं इसको दुःखी करता हूं क्या उनको शान्ति है ? शान्ति कैसे मिलेगी ? कर्तृत्व बुद्धि मिटानेसे शान्ति मिलेगी। वस्तुके स्वतन्त्र स्वभावका अनुभवहो कि हर वस्तुका स्वतन्त्र परिणमन है, एक वस्तु दूसरेका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है सब पदार्थ अपने ही परिणामसे परिणमन करते हैं, कोई भी रंचमात्र कुछ नहीं करसकता। इसप्रकार के अनुभवसे शान्ति मिल सकती है और यह अनुभव ज्ञानकी ही देन है। सम्यक्ज्ञानके अभावमें ही करनेकी चिन्ता लगजाती है कि मैं यह कररहा था यह करूंगा।

एक धुनिया किसी हवाई जहाज द्वारा आरहा था। उस जहाजमें २० टन रुई लदी हुई थी। उसके मनमें विचार आया कि यह सबकी सब रुई हमको ही तो धुननी पड़ेगी, बड़ा काम है। यह विचार आते ही वह बीमार होगया। घर आया, डाक्टर बुलाये गये, परन्तु वह कैसे अच्छाहो। कई डाक्टर वैद्य देखगये, परन्तु वह ठीक ही नहीं होता था। एक चतुरबुद्धि डाक्टर आया और उसने कहा कि हम इसको ठीक करदेंगे, परन्तु फीसके ५००) पांचसौ रुपये लेंगे। यह फीस स्वीकार करली गई। डाक्टरने एकान्तमें उससे कहा कि आप कहांसे और कैसे आये थे ? वह बोला कि मैं अमुक जगहसे हवाई जहाजसे

आरहा था। डाक्टरने पूछा कि तुमने उसमें और क्या २ देखा? तब वह बोला कि उसमें २० टन रुई लदी हुई थी। डाक्टर इससे सारी बात समझगया और बोला कि अरे, वह २० टन रुईमें तो आग लगगई और सारी रुई जलकर भस्म होगई। ज्योंही उस धुनियांके मनमें यह भाव आया कि वह रुई नहीं रही, वह सुखी होगया। जगत्के जीव दुनियांके काम करके दुखी हैं, यह काम, वह काम, कई काम पीछे लगे हुए हैं। अब यह करना है, अब लड़केकी शादी करनी है, अब उसको व्यापार कराना है इत्यादि। इसप्रकार वह दुखी ही रहता है। यदि दुखसे छूटना चाहता है तो केवल यह श्रद्धा करले कि भाई मैं क्या करसकता हूँ, जो कुछ किसीका परिणाम होना है स्वयं उसके आधीन है बस वह शान्त होजायेगा। उसका दुःख मिट जायेगा और वास्तवमें बात तो भैया ऐसी ही है। यह दुःख तो सम्यक्ज्ञानसे ही मिटेगा। सम्यक्ज्ञानके बिना दुःख मिटना सम्भव नहीं।

शास्त्रदान भी एक दान है। शास्त्र प्रदान करना, उनमें बुद्धि बढ़ाना, उनकी वृद्धि करना, उनको पढ़ाना, पढ़नेको साहित्य देना, उनको प्रकाशित कराना, सब शास्त्रदानमें शामिल है। आजका युग यह कहता है कि धार्मिक विषयोंकी पाठशालायें बढ़ाई जावें और साहित्य

का प्रचार खूब किया जाय। ज्ञानदान देनेसे आगे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। तीसरा दान औषधदान है। यह दान रोगका विनाश करनेवाला है। चौथा दान आहार दान है। इस दानके देनेसे चारों दानका फल प्राप्त हो जाता है। आहारदान तो दिया ही जाता है। इस दानके देनेसे जिसको भूखका जो रोग लगाहुआ था, जिससे कि उसके उदरमें पीड़ा होरहीथी, वह शान्त होजाती है। इस प्रकार यह औषधदान भी होगया। आहार लेनेसे उनका शरीर स्वस्थ होगया और चित्त पढ़नेमें लगगया इसलिये ज्ञानदान भी होगया। आहार देनेसे प्राणीको भूखसे मुक्ति मिलनेके कारण प्राणोंको सुदृढ़ता मिली, इसलिये वह अभयदान होगया। इसप्रकार एक आहारदान देनेसे सब दान एकसाथ प्रगट होगये।

विशल्याने अभयदान पूर्वभवमें अजगरको दिया था, जिसके फलसे उसके शरीरके जलसे छूतेही किसी भी रोगी का भयंकरसे भयंकर रोग भी दूर होजाताथा और सारा दुःख मिटजाता था। जो अभयदान देता है उसको ऐसा ही फल मिलता है। चारों प्रकारके दान देना उपचारसे उत्तमत्यागधर्म कहलाता है। जिसके मोह रहता है उसके उत्तमत्याग नहीं होता। वह निरन्तर भयभीत रहता है। वह अपने खुदके ही प्राण नहीं बचा सकता। जब मोही

अपने प्राणोंके बचानेका उपाय ही नहीं जानता तो अपने ज्ञानधनको बचानेका उपाय कैसे जानसकता है। मोही प्राणी मोह करते जाते हैं, दुःखी होते जाते हैं और दुःख से मुक्त होनेकी चिन्ता भी करते जाते हैं, परन्तु मुक्तिका उपाय नहीं करते।

एक बादशाह पशुओंकी बोली जानता था। एक दिन वह छतपर खड़ाहुआ जहां घोड़े और बैल बंधा करते थे उधर देखरहा था। घोड़े बैलोंसे कहरहे थे, क्योंरे भोले मूर्खों, तुम्हें ज़रा भी अक्ल नहीं। तुम्हारे ऊपर राजा इतना सारा बोझा लादता है और तुम लेआते हो। बैल बोले कि लाना ही पड़ता है, आप उपाय बताओ जिससे न लाना पड़े। घोड़ेने बताया कि जब तुम्हें जोतनेके वास्ते राजाके नौकर आयें तो तुम मरेके समान पड़जाना। राजा जानवरोंकी बोली जानता ही था, अतः उसने यह बात सुनली। जब नौकर बैलोंको जोतनेके वास्ते गये तो वे घोड़ोंकी सलाहके अनुसार पड़े रहे। नौकरोंने राजासे यह बात कही। राजाने आज्ञा दी कि घोड़ोंको जोत लेजाओ। घोड़े जोते गये। परन्तु घोड़े तो नाज़ुक पशु हैं, वे बैलोंके समान इतना बोझा लादकर नहीं ला सकते। बड़ी मुश्किलसे किसीतरह आये। फिर राजा छतपर आया तो घोड़ोंको बैलोंसे कहते सुना कि भाई बैलो, तुम

आज तो मरेसे पड़ेरहे सो ठीक है, परन्तु अब राजाकी आज्ञा हुई है कि अब यदि बैल बीमार पड़े तो उनकी इतनी पिटाई कीजाये कि वे याद रखें, चाहे उनकी मृत्यु ही होजाये। राजाने सोचा कि ये घोड़े तो बड़े बदमाश हैं। जब वे रानीके महलोंमें गये तो उन्हें हंसी आगई। रानीने पूछा कि आप हंसे क्यों? राजाने बहुत मना किया कि देखो मत पूछो, परन्तु रानी न मानी। तब राजा बोलने लगे कि मुझे पशुओंकी बोली तो आती ही है और उन्होंने घोड़ों और बैलोंकी बात रानीको बतादी। तब रानी ज़िद करने लगी कि मुझे यह पशुओंकी बोली सिखाओ। तब राजाने मना किया कि जिन्होंने मुझे यह बोली सिखाई है उन्होंने यह कहा है कि यदि तुम यह बोली किसी अन्य व्यक्तिको सिखाओगे तो तुम्हारी मृत्यु होजायेगी। अतः यदि मैं तुम्हें यह सिखाऊंगा तो मैं मरजाऊंगा। रानी फिर भी नहीं मानी और बहुत ज़िद की। तब राजाको वायदा करलेना पड़ा। अब राजा बहुत दुखी थे। जब सब जानवरोंको यह बात मालूम हुई तो सबको शोक पैदा होगया। वे कहने लगे कि आज राजा रानीको जानवरोंकी बोली सिखायेंगे और उनकी मृत्यु होजायेगी। मारेके सारे जानवर इससे बहुत दुखी थे। राजा एक स्थानपर जाकर चिन्ताग्रस्त होगया। वह क्या

देखता है कि सब जानवर तो दुखी थे, परन्तु एक स्थान पर एक मुर्गा और मुर्गी खेलरहे थे और बड़े हंसरहे थे। दूसरे जानवरोंने उनसे कहा कि अरे कृतघ्नी तुम बड़े दुष्ट हो, राजा आज मरजायेगा इससे सारे पशु तो दुखी हैं और तुम सुख मनारहे हो। तब मुर्गियोंने उत्तर दिया कि हम राजाके मरनेमें नहीं हंसरहे, जो मूर्खता वह अपने आप करने जारहा है उसपर हंसरहे हैं। यदि कोई हठ करता है तो उसके एक तमाचा इधर लगावे और एक तमाचा उधर लगावे, फिर देखें रानी कैसे हठ करती है। राजा अपने आप प्राण देरहा है और दुखी होरहा है। राजाके यह बात समझमें आगई और उसने सोचा कि क्यों मैं अपने प्राणोंका घात करूं। रानीसे कहदिया कि मैं तुम्हें बोली नहीं सिखाता, जो कुछ तुम्हें करना है सो करलो। स्त्रीके मोहमें पड़कर राजा व्यर्थ ही अपने प्राण नष्ट करनेवाला था। इसलिये भैय्या, कहाजाता है कि मोही अपने प्राणोंकी ही रक्षा नहीं करपाता, तो फिर वह अपने अन्तरंगमें रहनेवाले ज्ञानकी कहांसे रक्षा करे। आत्माके जो शत्रु हैं, वे हैं मोह, राग, द्वेष आदि भाव। बाहरमें कहीं कोई उसका शत्रु नहीं। ज्ञाता दृष्टाकी अपनी दृष्टि बनाये तो यह शान्तिका मार्ग है और यही उत्तम त्याग है। ऐसे ज्ञानी जीवोंके बाह्य परिग्रहसे कोई सम्बन्ध

भी हो तो भी अन्तरङ्गमें उनके प्रति मूर्च्छा न होनेके कारण उनका त्याग ही होता है इसलिये वह भी उत्तम त्याग है।

एक मां ने अपने लड़केसे पूछा कि बता तुझे धनका एक बड़ा पहाड़ मिलजाये तो तू उसे कितने दिनोंमें दान कर देगा। उसने उत्तर दिया कि मैं तो उसे एक क्षणमें ही दान कर दूंगा। उठाने वालोंकी गारंटी मैं नहीं करता कि वे कितने दिनोंमें उसे उठायें। उठाने वालोंका ठेका मैं नहीं लेता। यह है उत्तम त्यागकी बात सारे बाह्य पदार्थोंको छोड़कर आत्माके स्वरूपपर दृष्टि करो, जहां पर का प्रवेश नहीं, ऐसे एकांकी ज्ञानमय चैतन्य मूर्ति पर दृष्टिहो तो सब चीजोंका त्याग होगया। श्रद्धा ही से तो त्याग होगा। बाह्यमें भी इनके आगे पड़े रहनेसे इनका त्याग ही तो रहता, क्योंकि ये कुछ हमारी आत्मामें चिपक थोड़े ही रहे हैं। सब पापोंसे रहित रागद्वेषसे रहित अपने ज्ञानस्वभावको पहिचानो, उसमें स्थिर रहो, जगत्का बाह्य पदार्थ कोई भी साथ नहीं देगा।

आहारदान देनेसे धन, ऋद्धि आदिकी वृद्धि होती है। उत्तम त्याग दुष्ट विकल्पोंका त्याग कहलाता है। एक आदमी श्मशानभूमिमें बैठा अपनी आत्मबुद्धिमें लगा हुआ था। एक राजा वहां गया और कहा कि तुम इतना

कष्ट क्यों पाते हो ? बताओ तुम्हें क्या चाहिये, मैं तुम्हें दूंगा। उसने कहा कि मुझे तीन चीज़ चाहिये : ऐसा तो मुझे जीना दो जिसके बाद मरना नहीं हो। ऐसी मुझे खुशी दो जिसके बाद रञ्ज नहीं हो। ऐसी मुझे जवानी दो जिसके बाद बुढ़ापा न आये। इसपर राजा लज्जित होकर चला गया। इन बाह्य पदार्थोंमें क्या क्या विकल्प फंसा रखे हैं। इनका समागम सदा नहीं रहता। हमें बाह्य वस्तुओंमें बखेड़ा करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। अपने ज्ञानस्वभावको देखो। इन दुष्ट विकल्पोंका त्याग करनेसे ही उत्तमत्याग प्रगट होता है।

आज धर्मकी इतनी अवनति क्यों है ? इसलिये कि बड़े बड़े भाई त्यागधर्म भक्तिधर्ममें आगे नहीं आते। उनकी देखादेखी छोटे छोटे भी यही सोचकर कि यहां सुख नहीं होगा आगे नहीं आते। बड़े बड़े जो करते हैं उन्हींका तो अनुसरण प्रायः लोक करते हैं। लोगोंका यह सोचना प्राकृतिक है कि जो बड़े करते हैं उन ही मार्गोंमें ही लगे रहो, वहीं सुख होगा, वे केवल यही समझते हैं। इसलिये बड़े बड़े लोगोंको पहले स्वयंको आगे आना चाहिये। यदि बड़े लोग आगे नहीं आते हैं तो उनकी देखा देखी बच्चे भी उसी मार्गपर जाते हैं जिस मार्गपर बड़े जाते हैं। इसप्रकार उनको कितना पाप लगता है।

धर्मके मार्गपर उनके आगे न आनेके कारण ही धर्म आज अवनतिकी ओर अग्रसर होरहा है। धर्मके मार्गपर लगने पर ही शान्ति मिलेगी। सम्पदामें रहनेसे शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति मिलेगी तो सम्यक्ज्ञानमें मिलेगी। ज्ञानस्वभावकी वृद्धिमें ही लगजाना यही उत्तमत्यागका मार्ग है। भैया हमें इससे यह शिक्षा लेना है कि संसारमें जो दुःखी जीव हैं उनको दान दें। जो ज्ञानी पुरुष हैं उनका विशेष सत्कार करें। सर्वजीवोंपर आदर और श्रद्धा का भाव हो और चारों प्रकारके दान दें। इन बाह्य क्रियाओंके अतिरिक्त सबसे प्रधान बात तो यह ही है कि निजआत्माका निःसङ्ग स्वरूप पहिचानकर अनन्त अहेतुक असाधारण ज्ञानस्वभावमय निजका लक्ष्य रखे इस लक्ष्यसे उत्तमत्याग सिद्ध होजाता है।

: नौ :

उत्तम आकिंचन धर्म

न किञ्चन यस्य स अकिञ्चनः अकिञ्चनस्य भावः आकिञ्चन्यम्। मेरेसे अतिरिक्त कुछ भी मेरा नहीं है इस भावपूर्ण प्रत्ययको आकिञ्चन्य कहते हैं। इस भावके फल

स्वरूप सर्वप्रकारके परिग्रहके त्यागको भी आकिञ्चन्य कहते हैं। मैं जगत्में बाह्यपदार्थों को नहीं करता। सर्व पदार्थ अपने परिणमनसे स्वयं परिणमन करते हैं। मैं उनमें किंचित भी सुधार बिगाड़ करनेमें समर्थ नहीं हूं। स्त्री, पुत्र, धनादिकको तो बात ही क्या यह शरीर जोकि बिल्कुल मिलाहुआ-सा प्रतीत होता है वह मेरे आधीन नहीं। मेरा जगत्में कुछ भी बाह्यअर्थ नहीं। मेरा तो केवल यह आत्मा है और जगत्के कुछ भी पदार्थ मेरे नहीं हैं। इसप्रकारका विचार प्रत्यय करके जो सब परिग्रह का त्याग करदेते हैं वह कहलाता है आकिञ्चन्य व्रत। लोग इन बाह्यसम्पदा, वैभव आदि पदार्थोंको पाकर अपने आपको सुखी मानरहे हैं, परन्तु इनका वियोग होनेपर महान दुखी होना पड़ता है, और यह भी निश्चित ही है कि जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग अवश्य होगा। जगत्के बाह्यपदार्थोंसे हमारा वियोग होगा ही, इसलिये हम क्यों उनकी परिणतिमें अपना मन लगावें। जिस रूप जो पदार्थ परिणमन करता है करने दें—क्यों उनमें ममत्व करें? जब वह हमसे छूटेंगे ही और हमें वियोगजन्य दुःख मानना ही पड़ेगा तो हमारा कर्तव्य है कि इनके पहले वह हमें छोड़े हम ही उन्हें छोड़दें। और भैया! छोड़ क्या दें वह तो छूटे ही हैं, प्रत्यक्ष भिन्न ही हैं, हां तो

ध्रुव, अनादि, अनन्त, ज्ञानस्वभाव ही मेरा है ऐसी श्रद्धा, यह ही अकिञ्चनभाव है। इसप्रकार जगत्से न्यारी इस आत्माको जो भावे तो उसके दुःख नहीं आसकता। काम, क्रोध, माया, लोभ आदि विभाव कभी आत्माको सता ही नहीं सकते। केवल परिग्रह ही इस जीवको दुखी करने वाला है। इसलिये २४ परिग्रहों, १० बाह्य और १४ अन्तरंग, इन सब परिग्रहोंका त्याग करना ही आकिञ्चन्य कहलाता है। असलमें दुखदाई चीज तो अन्तरंग परिग्रह है, जबतक इसका त्याग नहीं होगा बाह्यत्यागसे कोई लाभ नहीं। जिनके अंतरंगपरिग्रह नहीं रहता, उनके बाह्य परिग्रह भी नहीं रहता। बाह्यपरिग्रह तो उनके स्वयं ही छूट जाता है। जितने भी लोग अन्तरंगपरिग्रहोंके त्यागी बने वे बाह्यपरिग्रहोंके त्याग सहित बने। जब अन्तरंगमें मोह ही नहीं रहा तो बताओ बाह्यके स्त्री, पुत्रादि धनादि वस्त्रादिको कौन संभाले? इनकी संभाल करनेवाला तो मोह परिणाम ही था। बाह्यअर्थोंके ममत्वके त्यागकी आवश्यकता है, यदि सुखी होना है तो। थोड़े दिनोंका जीवन है, और इन विभावोंकी प्रेरणामें हम पापकार्यमें कर्त्ता होरहे हैं। अतः इस अल्पसे जीवनका ध्यान रखकर इन विभावोंकी प्रेरणामें नहीं पड़ना चाहिये, ऐसा जानकर आकिञ्चन व्रतका पालन करो।

शरीरसे भिन्न ज्ञान स्वरूप है। इसके विना अपना कोई कार्य हो ही नहीं सकता। ऐसे निरुपमसुख और ज्ञानसे स्वयं परिपूर्ण, भयका जिसमें नाम नहीं, जिसके विनाशका सन्देह नहीं, ऐसे निजज्ञान स्वरूप आत्मामें ध्यान करो और वाह्य जगत्के पदार्थोंसे सम्बन्ध त्यागो। अपनेको निष्परिग्रह देखो। परिग्रहसे दुःख ही होता है परिग्रहकी मूर्छा त्यागो। एक कहावत है कि गुड़ भगवान के पासगया और कहने लगा कि मैं बड़ा दुःखी हूँ। भगवानने पूछा, कैसे ? तब गुड़ कहने लगा कि जब मैं गन्नेके रूपमें था तो लोगोंने मुंहसे चीर चीरकर खाया। कदाचित् वहांसे बचा तो कोल्हूमें पीसकर रस निकालकर पिया गया। वहांसे बचा तो कढ़ाईमें गरमकर करके घुटा। फिर वहांसे बचा तो गुड़ बना। फिर लोगोंने वैसे ही खाया। वहांसे बचा और जब सड़गया तो तम्बाकूमें मिला कर कूट कूटकर खाया। अब बताओ कि मेरा यह दुःख कैसे मिटे। तब भगवानने कहा कि जा, मेरे सामनेसे हटजा, तेरा यही न्याय है। तेरी बातें सुनकर मेरे मुंहमें भी यदि पानी आगया तो तू यहीं खतम होजायेगा। लालच ऐसी ही चीज है। यह वाह्य परिग्रह दया दया नहीं कराता। दस हजार रुपया सेन्ट्रल बेंकमें जमा कराये तो यह फिक्र रहता है कि कहीं बेंक फेल न होजावे। यह

बाह्यपदार्थ ऐसे ही हैं, कि जहां जाते हैं वहां ही अविश्वास पैदा होजाता है। औरकी तो बात जाने दो अपरिग्रही गुरुवोंपर भी परिग्रहीका अविश्वास जमजाता है।

एक पुराणकी कथा है कि वर्षायोगमें एक साधू एक पेड़के नीचे बसगया। उसी देशका एक सेठ था, वह वहां वैयावृत करनेलगा। यह सेठ पास ही के गांवका रहने वाला था। उसके पास काफी धन था। परन्तु उसके पुत्र कुपुत्र निकलगये थे। यदि उनके हाथोंमें उसका धन चला जाये तो वे समाप्त करदें, यह समझकर उसने अपना सारा धन लाकर उन साधूजी के निकट ही कहीं भूमि खोदकर गाड़ दिया और स्वयंने सोचा कि धनकी तो रक्षा यहां हो ही रही है, यहां रहकर मैं चार महीने साधूजी की सेवा करूंगा। परन्तु कुपुत्रने उसे धन गाड़ते हुए देखलिया था। वह अवसर पाकर चुपचाप आकर धन निकालकर लेगया। चार महीने किसीप्रकार बीते और वे साधुराज विहार करगये। उसके बाद सेठ भी वहांसे उठा और निर्दिष्ट स्थानपर खोदकर अपना धन ढूंढने लगा तो उसे कुछ भी नहीं मिला। उसके धनका वह हन्डा ही गायब था। तब सेठजीके मनमें विचार आया कि मैंने तो साधूजीकी बड़ी भक्तिके साथ सेवा की और उन्होंने मेरा हन्डा निकाललिया और अपने साथ लेगये। तब सेठ

साधूजीके पास गया और उन्हें तरह तरहकी बातें किस्सों के रूपमें कहकर समझावे और सारी बात प्रत्यक्षरूपसे न कहे। साधू सब बात समझगया और शान्तिसे उत्तरमें उसने भी कई कथायें कहदीं, जिसमें भावार्थ यह था कि हमने तेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, तेरा तो यह एक भ्रम ही है। सेठजीका वह कुपुत्र पीछे खड़ा होकर यह सारी बात सुनरहा था और सारी बात समझगया। उसने साराका सारा धन लाकर सेठजीसे कहा कि धनको निकालकर लानेवाला तो मैं हूं। हे संसारके खम्भ महाराज, आपका साराकासारा धन यह हाजिर है। मुझे ऐसे धनकी आवश्यकता नहीं, जिसके कारण साधुसन्तोंपर भी अविश्वास पैदा होता है। ऐसे धनको आप ही सम्भालना। यह कहकर वह कुपुत्र वैराग धारण करगया।

सो भैय्या, बाह्यपदार्थोंसे मनुष्यकी महिमा नहीं होती। वहाँ वह जो कुछ भी कार्य करसकता है केवल रागके कारण। जो भी काम करो अपनी आत्माके कल्याण केलिये करो। जहां भगवानकी पूजा करते हो, वहां भी वह तुम अपना ही काम कररहे हो। जहाँ भक्ति करते हो वहां भी अपना ही काम करते हो। मैं अकिञ्चन हूं। भगवानका आदर्श आकिञ्चनभावको बतानेके लिये है। भगवानको आदर्श स्वतन्त्र सुखपूर्णभावको दिखानेके लिये

है। आत्मा स्वतन्त्र और महान है। वह दूसरी वस्तुओं के कारण बड़ा नहीं होसकता। कुबुद्धियोंकी दृष्टिमें कुबुद्धि ही बड़ा होसकता है, परन्तु ज्ञानीकी दृष्टिमें तो ज्ञानीजन ही बड़े होसकते हैं। वे ज्ञानको बड़ा मानते हैं, धनको बड़ा नहीं मानते। ज्ञानस्वभाव ही अमृत है, वह सदा रहनेवाला है। इसलिये ज्ञानियोंकी दृष्टि केवल ज्ञाता दृष्टा स्वरूपकी दृष्टि रहती है। बड़े २ पापी भी ज्ञानामृत पीकर पवित्र बनजाते हैं। एक निजआत्माकी श्रद्धा बिना कोई पवित्र एवं महान् नहीं बनसकता।

एक पुरुष बड़ा पापी था, उसकी पत्नीने उससे कहा कि देखो आप केवल एक काम करो और मैं तुमसे कुछ नहीं कहती। उसने एक बट्टी दी और कहा, ये देवता है, इनकी रोज पूजा करलिया करो और पूजा करनेके बाद पापकर्म २४ घन्टोंकेलिये छोड़दिया करो। पतिने सोचा यह तो बहुत सरल है और वादा करलिया। उसको यह बुद्धि नहीं आई कि इस प्रकार तो मेरा पाप ज़िन्दगीभर केलिये छूटगया। खैर वह रोज़ाना ही पूजा करनेलगा और पूजाके बाद २४ घन्टोंकेलिये पाप छोड़देता। चावलों से वह पूजा किया करता। एक दिन वह पूजा कर ही रहा था कि एक चूहेने वे चावल खालिये। तब वह सोचने लगा कि ये देवता बड़े नहीं हैं, बड़ा तो यह चूहा है जो

ये चावल खासकता है। अतः वह नित्यप्रति चूहेकी पूजा करनेलगा। एक दिन बिल्ली चूहे पर झपटी, तब वह समझने लगा कि अब तो पूजाके योग्य यह बिल्ली है अतः वह बिल्लीकी रोज़ाना पूजा करता और बादमें २४ घन्टेके लिये पाप छोड़देता। एक दिन कुत्ता आया और वह भी बिल्लीपर झपटा। तब वह समझा कि अब तो कुत्ता ही बड़ा है और कोई बड़ा नहीं है। यह समझकर कुत्तेकी पूजा करनेलगा और पूजाके बाद २४ घन्टेकेलिये पाप छोड़देता। एकदिन जब वह खाना खारहा था वह कुत्ता रसोईघरमें घुसगया तो उसकी स्त्रीने उसके बेलनकी मार दी। कुत्ता भागगया अब उसके विचार आया कि अब तो स्त्री ही कुत्तेसे बड़ी है, इसलिये वह स्त्रीकी ही पूजा उन्हीं चावलों आदि उपकरणोंसे किया करता। पूजा के बाद २४ घंटेकेलिये पापकर्म छोड़देता। कुछ दिनों बाद स्त्रीको घमंड होगया कि हमारी तो देवताओंकी तरह पूजा होती है। एक दिन पति जब खाना खाने बैठा तो सागमें उसे नमक अधिक लगा। उसने पत्निसे कहा कि आज सागमें नमक अधिक कैसे होगया? पत्निने कहा कि होगया होगा, हाथ ही तो है। पतिको गुस्सा आगया और उसने तीन-चार धमाके स्त्रीके मारदिये स्त्री रोने लगी। तब वह सोचने लगा कि ओह, मैं ही तो संसारमें

बड़ा हूँ। मैं कहां कहां भटका, बड़ा तो मैं ही हूँ। इसी तरह यह जीव भी संसारमें न जाने कहाँ कहाँ भटकता है। कुछ भी देखो, सुनो, कहीं भी जाओ, अपने आपमें यही ज्ञानस्वभाव आत्मा बड़ा मिलेगा। जगत्में कोई पदार्थ इससे बड़ा नहीं मिलेगा। यही सभी प्राणियोंकी व्यवस्था है। जैसे अपनेमें आकिञ्चनभाव पैदा किया जायेगा, बाह्य पदार्थोंसे ममत्वभाव दूर किया जायेगा, इसीसे ज्ञान भी बढ़ता जायेगा और महान होता जायेगा। भैय्या सबकुछ पाकर भी अपनेको ना कुछ समझो। धन पाया, कुटुम्ब पाया, प्रतिष्ठा पाई, नाम पाया, सब ही कुछ तो पाया परन्तु कहीं भी सुखशान्ति न मिली–सदैव उनके वर्द्धनमें, रक्षणमें आकुलित ही तो बने रहे। अब जरा मनमें यह श्रद्धा तो करलो कि ये मेरे कुछ भी नहीं हैं, मैं तो अकिञ्चन हूँ देखें कैसे सुख नहीं होता। अवश्य होगा।

आकिञ्चन्य कहते किसे हैं? सर्वपरिग्रहके त्यागका नाम आकिञ्चन्य है। मैं जगत्में बाह्यपदार्थों को नहीं करता, मेरा जगत्में कुछ भी बाह्यअर्थ नहीं। अपने आप ही कर्मको निमित्तमात्र पाकर उठनेवाली तरंगें राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि ही मेरी नहीं है जिनमेंसे मैं गुज़ररहा हूँ। अपने आपके भी परिणमनसे जो रहता है उसमें भी आत्मबुद्धि नहीं करते, ऐसे सम्यक्ज्ञानी परिग्रहका त्याग

करके आकिञ्चन्यव्रतके पालक कहलाते हैं। यह आत्माके शुभ ध्यानरूप होता है और इसकी शक्तिको प्रकट करता है। ममत्व परिणामोंको त्याग करना ही आकिञ्चन्यव्रत है। अपने आपको जगत्का कुछ मानना कर्तृत्ता है और मेरा जगत्में कुछ नहीं है ऐसा मानना अपनी श्रीमत्ता है। एक जगह लिखा है कि दरिद्रता क्या है? दरिद्रता है असन्तोष। जहां सन्तोष है वहां श्रीमत्ता है, जहां असंतोष है वहां दरिद्रता है।

सदा संतोष कर प्राणी जो सुखसे रहा चाहे।
घटादे मनकी तृष्णाको जो दुःखसे बचा चाहे॥

एक फकीरको एक पैसा मिलगया। उसने उस पैसे को लेकर यह निश्चय किया कि जो सबसे ज्यादा गरीब होगा उसको यह पैसा देदूंगा। वह गरीबको ढूंढनेलगा। कोई ऐसा गरीब उसे नहीं मिला। एक दिन एक नगरका बादशाह एक राजापर चढ़ाई करने और उसका राज लेने जारहा था। उस फकीरने पूछा तो पता लगा कि वह किसी राजाका राज्य छीनने जारहा है। उसने अपना पैसा उस बादशाहके हौदेमें डालदिया। बादशाहने उसे देखा तो उससे पूछा कि तुमने मेरे पास यह पैसा क्यों डाला है तो उसने उत्तर दिया कि महाराज हमें यह पैसा एक स्थानपर मिलगया था, हमने यह विचार करक्खा था

कि जो सबसे अधिक गरीब आदमी हमको मिलजायेगा उसको यह पैसा देदेंगे। आप ही हमको सबसे अधिक गरीब आदमी नज़र आये। बादशाहने पूछा कि हम कैसे सबसे अधिक गरीब आदमी हैं, हमारे पास इतना बड़ा राजपाट, इतने नौकरचाकर, इतनी रानियां, इतनी बड़ी सेना आदि सब तो हैं, फिर हम कैसे गरीब हुए? तब वह फकीर बोला कि महाराज, इतना सबकुछ होते हुए भी आप एक गरीब राजाका राज्य हड़पने जारहे हैं, फिर आप गरीब नहीं तो और क्या हैं? राजाके समझमें यह बात आगई और उसने तुरन्त अपनी सेनाको लौट जानेका आदेश दिया। उस फकीरके पैसेने उसे धनी बनादिया। सन्तोषपना ही धनीपना है। इसलिये जो कुछ तुम्हें मिला है उसमें सन्तोष करो। जो कुछ तुम्हें मिलता है उसमें विभाग करके काममें लाओ, कुछ खानेकेलिये रखो और कुछ धर्ममें लगाओ और उसीमें पूर्ण सन्तोष रखोगे तो उसके सिवाय शान्तिका मार्ग और कोई नहीं है। यह आकिञ्चन्यव्रत मानलो रत्नत्रयका ही पिंड है। जहां सम्यक्ज्ञानचारित्र प्रकट होते हैं वहां ही उत्तम आकिञ्चन व्रत होता है।

इन्द्रियोंके वश जो अपने विषयकषायोंमें विकार उत्पन्न करता है, उन विभावोंको संयमित करना, दूर

करना, आत्मध्यान करना, सो आकिञ्चन व्रत है। देखो भैया इन्द्रियोंके दास रहनेमें चाहे इस भवमें सुखी हो लें परन्तु परभवमें दुर्गतिसे कौन बचायेगा इससे उत्तम तो यही है कि यहीं तपस्या सहलें। आत्म-स्थिरता पालें। और यदि विचार करके देखो तो भैया, इन्द्रियोंके विषय यहां भी सुखदायी नहीं हैं। उनके प्राप्त होनेसे पहले आकुलता, उनके कालमें आकुलता, और उनके बादमें आकुलता और जहां आकुलता वहां सुख शान्ति कहां? एक बार एक राजाने अपने दरबारमें एक प्रतिष्ठित साधुको जङ्गलसे बुलाया। उस साधुने सोचा कि नहीं जाऊंगा तो राजा उपद्रव करेगा। अतः चलना ही ठीक है। परन्तु वह अपना मुंह काला करके गया। राजाने पूछा कि आप काला मुंह करके क्यों आये? साधूने उत्तर दिया, महाराज इस तरहसे दरबारोंमें आनेसे अपनी सेवायें इनकारसे करानेसे इस भवमें काला मुंह नहीं करूंगा तो हमें परभव में काला मुंह करना पड़ेगा, इसलिये परभवके काले मुंहसे डरकर मैं इसी भवमें काला मुंह करके आया।

राजाके दिलमें यह बात बैठ गई और उसने उस दिनके बाद कभी किसी भी साधुको अपने दरबारमें नहीं बुलाया। इसलिये जो यह मानता है कि यह कुछ मेरा है, उसका कुछ भी नहीं रहता और जो जानता है कि

जगत्का कोई पदार्थ मेरा नहीं है, वह महान् बनजाता है। उस महान् आत्माका ममत्व धनमें नहीं होता। उसका ममत्व अपने ज्ञानमें ही होता है और उसकी वृद्धिकी ही उसको तृष्णा होती है अर्थात् न ममत्व होता है न तृष्णा होती है। मेरे पास तो कुछ भी नहीं रहेगा, सभी लोग ऐसा समझें। ज्ञानीके परमें हठबुद्धि नहीं होती। ज्ञानीजन कोई शास्त्र पढ़ रहा हो और कोई दूसरा आदमी उससे वह शास्त्र माँगे तो वह कभी नहीं कहेगा कि मैं पहले पढ़लूं फिर दूंगा, अभी नहीं देता। अज्ञानीजन तो ऐसी भी धारणा बना लेते हैं कि मैंने यह विद्या सीखी है, अब मैं दूसरेको नहीं सिखाता, यदि सिखादूं तो वह भी मेरी बराबरी करने लगे। ज्ञानीजन तो यह सोचते हैं कि मैं तो स्वयं ही ज्ञानसे परिपूर्ण हूं। बाह्य पदार्थसे मेरा ज्ञान पूरा नहीं होता यह शास्त्र दे दिया तो विकल्प हटानेका अवसर मिल गया। **भाइयो! ये** जितने भी बाह्य वैभव हैं, कोई तुम्हारा साथ नहीं देंगे। इसलिये इनका सदुपयोग करो। इनको मिटना तो है ही। चाहे तुम इनको छोड़ जाओ, चाहे ये तुमको छोड़ दें, वियोग तो होना ही है। संयुक्त वस्तुका वियोग तो नियमसे होता ही है। इसलिये अपने तत्वज्ञानको बढ़ाओ और जगत्के बाह्यपदार्थ मिलें ही हैं तो इनका सदुपयोग करो। दुनियांके विषयोंसे अपना

मन हटानेसे आकिंचन्य व्रत होता है। केवल आत्मा रूप रहनेकी ही परिस्थिति स्वाधीन सुख है। मैं स्वाधीन सुख से सुखी होऊं।

जहाँ तृणमात्र भी परिग्रह नहीं अथवा तृणमात्रमें भी मूर्छा नहीं है, वहां ही आकिंचन व्रत है। कहा भी है— "फांस तनिकसी तनमें साले, चाह लंगोटीकी दुख भाले" एक लंगोटीका धारण करना भी मोक्ष मार्गको भंग किया करता है। बिना मुनि लिङ्ग धारण किये मोक्ष हो ही नहीं सकता। जहां तृणमात्र भी परिग्रह नहीं, वहीं आकिंचन्य व्रत है। ये नग्न दिगम्बरस्वरूप जो मुनि हैं वे आकिंचन्य व्रतकी मूर्ति हैं। यदि सुखी होना है तो सब परवस्तुओंको छोड़ो और अपने आपमें आकिंचन्यभावरूप अनुभवको पाओ। कई लोग कहते हैं कि नङ्गा रहना बुरा है। परन्तु वह बुरा तभी है जब कि उस नग्न रूपको देखकर विकार आ जावे। विकार नहीं आवे और नग्न [illegible] तो वह बुरा नहीं है। अविकारीरूपसे नग्न [illegible] कहा कि नग्न होना बुरा है। अविकारीरूपसे जो आज दिगम्बर साधु होते हैं वे बालकके समान [illegible] पहले जमानेमें १०—१२ वर्षके बच्चे भी नंगे फिरा करते थे और ७—८ वर्षकी लड़की नहीं [illegible] स्थान की छोटे छोटे बच्चोंको भी [illegible]

करते । पहले तो उनके नंगे रहनेमें किसी प्रकारका विकार पैदा नहीं होता था, परन्तु अन्न दूषित वातावरण होनेसे विकारका भाव पैदा होनेके कारण नंगे नहीं फिरने दिया करते । बड़े बड़े लोग कहते हैं कि नंगा होना बुरा है यही भाव बच्चोंमें है । आज तो लोगोंको विकार जरासी बातमें होजाता है । यह विकार आकिञ्चन्य भावके अभावमें प्रकट होता है। नग्न रूपका दीखजाना, यह विकारका कारण नहीं । विषयइच्छा ही विकारका कारण है । जहाँ तृणमात्र भी परिग्रह नहीं वहां ही आकिंचनव्रत होता है । जहां आत्मा और परका भिन्न भिन्न विचार प्रगट हुआ वहाँ आकिंचनव्रत होता है । यदि यह आत्मा विषयकषाओंके दु:खसे मररहा है तो सर्वपदार्थोंको त्यागदो और अपने आपकी, आत्मा की रक्षा करो । सर्वपदार्थोंके त्यागके बिना सुख हो ही नहीं सकता । आजकी यह आकिंचन्यभावना परम अमृत भावना है । सुख इस भावनाके माननेसे ही मिलेगा । जहां परमेष्ठीकी भक्तिकी जाती है वहां आकिञ्चनव्रतके पालन करनेवालोंकी ही स्तुति हुई और उनकी क्या स्तुति हुई आकिञ्चनगुणकी स्तुति हुई, उसकी रुचि हुई और रुचि होनेसे वहां ही आकिञ्चनव्रत होता है । आकिञ्चनव्रतका धर्म अकिञ्चनको ही उपजेगा, सकिञ्चनको नहीं उपजेगा । जगतके अन्दर जो चाहेगा कि बाह्य वस्तु मेरी है, उसके

हाथमें दुर्गति ही मिलेगी। जहाँ [illegible] त्याग कियाजाता है वहां ही आकिञ्चन धर्म प्रगट [illegible] है।

जहां तुच्छ संकल्पोंका त्याग किया [illegible] है, वहां ही आकिञ्चनधर्म प्रगट होता है। [illegible] आकिञ्चन [illegible] प्रभावसे तीर्थंकर मोक्ष गये। [illegible] पहले तो क्रोधका त्याग कराया, फिर [illegible] कराया, फिर लोभका त्याग कराया, [illegible] तप, त्याग और आकिञ्चन कराये। [illegible] ब्रह्मचर्य पाया। [illegible] पाया, आत्माका शुद्धरूप पाया। [illegible] प्रयोग करो। एक [illegible] इनमें हुई जवानी [illegible] कि [illegible] [illegible] संयम [illegible] तो [illegible] कर [illegible] यह [illegible] होता है कि [illegible]

[illegible]

चैतन्यमें तप पैदा होगया। उस तपसे रागादि, द्वेष आदि आत्ममैलोंका त्याग होगया। इसके त्यागहोनेसे आकिंचन्य रहजायेगा अर्थात् केवल आत्मस्वभाव रहजायेगा और कुछ भी उसके पास नहीं रहेगा। ऐसे आकिंचन होनेके बाद ब्रह्मचर्यमें अपनेआपकी शुद्धस्वभावरूप उसकी स्थिति होगई। इसप्रकार ब्रह्मचर्यमय धर्म आकिंचनसे ही प्रगट होजाता है। अतः आकिंचन्यधर्मका सदा आदर करना चाहिये। अर्थात् मैं दूसरोंका नहीं हूं, दूसरे मेरे नहीं हैं, मैं एक ज्ञानमात्र हूं ऐसा सदैव ध्यान करना चाहिये।

: दस :

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

अब आज उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म का वर्णन है। ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? ब्रह्म माने आत्मा,—आत्मस्वभाव है ज्ञान-दर्शन और ज्ञानस्वभावमें ठहरना इसे कहते हैं ब्रह्मचर्य। राग, द्वेषरहित निर्विकल्प ज्ञानस्वभाव निज-आत्मतत्वमें स्थिर रहना और केवल ज्ञाताद्रष्टा ही बने रहना, यही उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्यके घातक पांचों पाप हैं। हिंसासे भी ब्रह्मचर्य नष्ट होता है। झूंठ बोलनेसे,

चोरीसे, कुशील सेवनसे और परिग्रहके कारण भी ब्रह्मचर्य नष्ट होता है। ब्रह्मचर्यके पालन करनेकेलिये इन पांचों पापोंका त्याग बताया है। ब्रह्मचर्यमें इन पाँचोंमें से कुशील नामक चौथे पापके त्यागकी प्रसिद्धि है। कुशीलके त्याग से ब्रह्मचर्य है। कुशील एक ऐसा बुरा पाप है जिसमें कामी पुरुषोंका चित्त ठिकाने नहीं रहता। उसे कुछ भी नहीं सूझता। वह शरीरको, उसके बीजको नष्ट करके भी अपने आपको सुखी करना चाहता है। कामीजन राग-रङ्गरेलियोंमें आसक्त होते होते अपने आपको सुखी समझते हैं। कामके बराबर जगत्में कोई व्याधि नहीं। काम वासनाकी व्याधि सबसे बड़ी व्याधि है। कुशील आत्माके मूलहितको जड़से नष्ट करदेता है। इस पापके समय आत्माको निजस्वरूपकी सावधानी नहीं रहती, ब्रह्मचर्य की सन्मुखता नहीं रहती। इसलिये कुशीलके त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्यका बड़ा महत्व है। ब्रह्मचारी सदा शुचिः। जिसके परद्रव्य विषयक रुचि नहीं रही है, कामबाधाका तो निशान भी नहीं है ऐसे आत्मसन्मुख दृष्टिवाले भव्य अन्तरात्मा सर्वशल्योंसे रहित, सत्यानन्दमय रहते हैं। कदाचित् कर्मोदयको निमित्तमात्र करके उदित स्वयंकी अशक्तताके कारण गार्हस्थ्यजीवनमें किसी ज्ञानीकी परिस्थिति हो तो वहां भी वे ब्रह्मचर्यामृतका

पालन रखते हैं और सतत यही प्रत्यय करते हैं कि वस्तुतः मैं निष्कर्मा हूं यह क्रियायें क्षणिकविभाव हैं और अशक्ति को दूर करनेकी भावना रखते हैं। इसके पालन करनेवाले स्वदार संतोषी गृहस्थके संतान सुभग और बुद्धिमान होती है। ब्रह्मचर्य कुशीलके त्यागको कहते हैं। गृहस्थियोंका ब्रह्मचर्य बताया है कि अपनी स्त्रीमें ही सन्तोष रखना, अपनी स्त्रीसे मनमाना काम सेवन न करना, अपनी स्त्री के भोगमें भी कामवासनाका भाव अधिक न रखना। ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। गृहस्थीको कितनी बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है। व्यर्थ मज़ाक न करना, जैसे कि प्रायः पति-पत्नियोंमें हर्षमें रागमय वचन बोलनेकी आदत पड़जाती है तो वह भी बुरी बात है। हर्ष में तो धर्मकी आदत होनी चाहिये। धर्मयुक्त वचन बोलना चाहिये। ज्ञानी आदमीके सामने तो विषयका प्रसंग आजाये तो वह ज्ञानी दुखी होता है। वह अन्तरंगसे दुखी होता है। गृहस्थियोंको बच्चोंके सामने मज़ाक नहीं करना चाहिये। अधिक समय ब्रह्मचर्यका भाव कंदर्प आदि अतिचारोंसे दूर रहनेवाले ही रखते हैं।

गुजरातका जिक्र है कि एक राजा था। राजापर मुगलोंने चढ़ाई करदी। मुगलोंकी सेनासे लड़नेकेलिये राजाका लड़का गया। वह वीरतासे युद्ध करता रहा।

अवसरकी बात है कि युद्धमें उस राजाके लड़केका सिर कटगया फिर भी उसके हाथकी तलवारने बहादुरीसे १०,११ मुगलोंको मारदिया। मुगलोंके राजमंत्रीने सोचा कि यह कितना बहादुर है, फिर वह तो और भी अधिक बहादुर होगा जिसकी यह संतान है, जिसने मरजानेपर भी १०,११ सैनिकोंको समाप्त करदिया। यह बात जाकर उसने मुगल बादशाहसे कही। बादशाहने कहा कि उस राजाको हमारे राज्यमें लाओ ताकि हम उसका विवाह अच्छी लड़कीसे करदेंगे, ताकि ऐसी ही बहादुर संतान हमारे राज्यमें भी हो। वह मन्त्री उस राजाके पास गया और बोला कि महाराज, हमारे बादशाहने बुलाया है। राजाने पूछा कि बुलाया क्यों है? तो उसने कारण नहीं बताया। राजा उसके साथ होलिया। रास्तेमें राजाने बहुत ज़िद की कि हमें कारण बताओ। तो मन्त्री बोला कि महाराज, आपके पुत्रके बलकी प्रशंसा सुनकर हमारे राजा ने आपको अपने राज्यमें बुलाया कि आपकी शादी राज-घरानेकी किसी भी लड़कीसे वहां करदेंगे और आप उनके राज्यमें रहकर वैसी ही बलवान संतान पैदा करो। तब राजा बोला कि अच्छा भाई, वहां हमारे लायक कोई लड़की भी मिलेगी? तो मुगल मन्त्री बोला कि अच्छी से अच्छी लड़कियां, सुन्दर सुन्दर हमारे राज्यमें हैं। तब

राजा बोला कि मुझे सुन्दर लड़की नहीं चाहिये। मुझे ऐसी ही लड़की चाहिये जैसी कि मेरी रानी थी। तब मन्त्री बोला कि महाराज आपकी रानी कैसी थी? तब राजाने अपनी रानीका चरित्र सुनाना प्रारम्भ किया कि जो राजपुत्र लड़ाईमें मारागया जब यह केवल ६ मासका था और पालनेमें सोरहा था, तो मैं रानीके कमरेमें गया और कुछ राग भरी बात रानीसे कहने लगा। तब रानीने टोका कि इस बच्चेके सामने रागमिश्रित बात मत बोलो। तब मैंने कहा कि इतने छोटे-से बच्चेके रहनेसे क्या होता है? ऐसी हम बातें कर ही रहे थे कि उस बच्चेने शर्मसे अपना मुंह ढांकलिया। यह बात रानीने देखली और वह बोली कि देखो आप इसके सामने रागभरी बात करते थे, इसलिये इसको भी शर्म आगई और इसने अपना मुंह चादरसे ढांक लिया। यह कहकर रानी अपनी जीभ निकालकर, उसे दांतोंके बीच चबाकर मरगई। यह उसके शीलकी थोड़ीसी कहानी है सारी चर्याका तो कहना ही क्या? अतः यदि तुम्हारे राज्यमें ऐसी ही शीलवन्त लड़की हो तो मैं उससे विवाह करसकता हूँ, तब ही ऐसी बलवान संतान पैदा होसकती है। मन्त्री अपना-सा मुंह लेकर चलागया। इससे क्या निष्कर्ष निकला? संतानमें सुबुद्धिका आना, बलका आना, ज्ञानका बढ़ना, योग्यताका

आना, माता पिताके शीलस्वभावपर निर्भर करता है। इसलिये बच्चोंके आगे व्यर्थ मजाक न करो और असमयमें भी व्यर्थ मजाक न करो। धर्मसे रहो तो सन्तान और पति पत्नि सबपर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

ब्रह्मचर्य आत्मामें लीन रहनेका उपदेश करता है। इस समाधिभावकी प्राप्तिकेलिये कुशीलके भावका त्याग करना पूर्ण आवश्यक है। सन्तोष धारण करनेवाले गृहस्थी जनों को सदा शीलका पालन करना चाहिये।

हे भव्यजीव, ब्रह्मचर्यव्रत महान् दुर्धरव्रत है। यदि कठिन चीज़पर अपना वश होजाये तो वह प्राणी सदाके लिये सुखका मार्ग पालेगा। इन विषयोंकी आशाको दूर करके इस दुर्धर धर्मको अच्छी तरहसे पालना चाहिये। अपनी स्त्रीके अतिरिक्त सबको माता, बहिन, पुत्री समझो। स्त्रियां भी अपने पतिके अतिरिक्त सभी पुरुषोंको पिता, पुत्र और भाई समान समझें। ऐसा समझनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यदि उनमें उपयोग ही न जावे। ऐसे दुर्धर ब्रह्मचर्य धर्मको धारण करना चाहिये जिससे कि विषयोंकी आशा ही पैदा न हो सके। विषयोंके आसक्त सप्तम नरकके नारकोंसे भी पतित हैं। वे तो सम्यग् दृष्टि हो सकते हैं परन्तु भोगासक्तको सम्यक्त्वकी गन्ध (आभास) भी नहीं होसक्ती है।

एक कविने एक वेश्यागामीका ऐसा चित्र खींचा है–वेश्याकी नाचने गानेकी सभा लगरही है, मंजीरे भी बजरहे हैं, मृदङ्ग भी बजरहे हैं, वेश्या नाचरही है, जितने आदमी उस सभामें बैठे हैं वे अपना सिर भी हिलारहे हैं। तो वह कवि कहरहा है कि मृदङ्ग कहे धिक् है धिक् है, मंजीरे कहें किन को किन को, तब वेश्या हाथ पसार कहे, इनको, इनको, इनको, इनको। जितने भी व्यक्ति उस वेश्याकी सभामें बैठे थे उनको उपमा दी गई कि मृदङ्ग तो कहता है कि धिक्कार है, मंजीरे कहते हैं कि किनको धिक्कार है? तब वेश्या उन बैठे हुए लोगोंकी तरफ हाथ पसारकर कहती है कि इनको धिक्कार है जो यहाँ अपना समय नष्ट कररहे हैं। वेश्याओंके जाने वालोंका यही हाल है। यही सिनेमा देखनेकी बात है। लोग कहते हैं कि क्या होता है सिनेमा देखनेमें। आजकलके सिनेमा कहते हैं कि हमको शिक्षाका प्रसार करनेकेलिये ईश्वरने भेजा है। परन्तु अच्छेसे अच्छा सिनेमा होगा तो वहां भी खोटी बात अवश्य मिलेगी। धार्मिक सिनेमा भी कोई इन कम्पनियोंमें बनाता है तो उसमें भी बीच बीचमें ऐसी बात आजाती है कि लोगोंको पापकी ओरकी रुचि उनमें मिल सके। जिनको अपने ब्रह्मचर्यको स्थिर रखना है, उनको सिनेमाको त्यागना चाहिये। अच्छी अच्छी रीलें यदि

बनाई जायें तो उनमें अश्लील बातें नहीं आनी चाहियें। ब्रह्मचर्यार्थीको बाजारकी अभक्ष चीज़के खानेका त्यागहो। कितनों ही में यह प्रथा चलगई कि अण्डे और मांस खाये बिना चैन ही नहीं पड़ता। परन्तु यह नहीं सोचा कि ये अण्डे और मांस हैं क्या? अण्डे जब गर्भमें आते हैं तो जीव आजाता है। पहले तो रज वीर्य बहुत बहुतसे अंशों में रहते हैं, परन्तु फिर जीवके आनेके कारण ही उनमें कठोरता आती है। पहले तो मांस जैसे ढीले ढालेसे रहते हैं, फिर कठोर होजाते हैं। वह पंचेन्द्रिय जीव अण्डे हैं। मांसमें उसमें भी जीव है और पकते हुएमें भी जीव पैदा होते हैं। उसमें तो हरसमय जीव पैदा होते रहते हैं। इन अभक्ष चीज़ोंका त्याग ब्रह्मचर्य धारण करनेकेलिये है। अनुचित आहार-विहारसे मैथुन तथा कामभाव बढ़ता है। मैथुन प्रसङ्ग शरीरका राजा जो वीर्य है उसको समाप्त कर देता है। इसलिये अधिकसे अधिक ब्रह्मचर्य धारण करो। महीनेमें २५ दिन, २६ दिन, २८ दिन, लगातार तीन महीने, ६ महीने जितने दिन होसके ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।

मेरठमें एक ३०-४० वर्षकी आयुका युवक था। पहले उसका कैसा चरित्र था यह हम कह नहीं सकते। यही समझलो कि हर एक काममें परफेक्ट था। इसने

धर्ममें लगन लगी तो वह मुझे कहता था कि २-३ वर्षसे आपके समागम कभी २ प्राप्त होते रहनेके कारण हमारे जीवनमें बहुत परिवर्तन होगया। हमारे कारण कुछ नहीं हुआ, उसके ज्ञानसे परिवर्तन हुआ। ऐसे जीवने आजीवन महीनेमें २९ दिनका ब्रह्मचर्य रखा और उस मर्यादामें एकदिन भी उस कमरेमें नहीं सोया जहाँ उसकी स्त्री सोती थी। ज़मीनपर भी सोजाता, कायाक्लेश भी सहता और स्त्रीकाम केवल एकदिन रखा है, सो उसदिन भी ब्रह्मचर्य का पूर्ण ध्यान रखता है। उसे अनुभवमें आगया कि कुशील बहुत गंदी चीज़ है। इससे दूर रहकर जो रह सकता है वह अपनी आत्माका उत्थान करेगा। यह ब्रह्मचर्यव्रत वास्तवमें तो ज्ञानी पैदा करते हैं। अनादि, अनन्त, अहेतुक, ज्ञानस्वभावको जानकर किसीप्रकारके विषयकषायमें विषयबुद्धि नहीं करना यही ब्रह्मचर्य है। आध्यात्मिक दृष्टिसे ब्रह्मचर्य यही है। इस दृष्टिसे विषय-कषायोंमें रत रहनेवाला व्यभिचारी कहाजाता है। सबसे बड़ी बात विषयभोगके त्यागकी होती है। इसके त्याग वालेको अन्य विषयोंके त्याग अति सरल हैं।

यह कामका रोग और किसीतरह कुछ नहीं पैदा होता। मनका विकल्प होनेसे ब्रह्मचर्यका घात होता है। यह काम मनोज है। पुरुष स्त्रियोंके अत्यन्त निन्द्य शरीर

का सेवन करता है और स्त्री भी पुरुषोंके अत्यन्त निन्द्य शरीरका सेवन करती है। कामवासनाके वशीभूत होकर कितने ही पापी निजस्त्री और परस्त्री में किसी प्रकारका भेदभाव नहीं करते। खोटेसे खोटा काम करदेते हैं। एक बार राजा भोजके सामने एक वेश्या अमरफल लाई। उस अमरफलकी कथा यह है कि राजा कहींसे आरहा था तो रास्तेमें किसीने वह अमरफल उसे भेंट किया था। उसने सोचा कि मेरी स्त्री मुझे सबसे प्यारी है इसलिये इस अमरफलको मैं उसे दूंगा। तब उसने महलोंमें आकर उसे रानीको देदिया और कहदिया कि इसे तुम खाजाओ, तुम अमर होजाओगी और मैं सुखी होसकूंगा। रानीका कोतवालसे प्रेम था, इसलिये उसने स्वयं न खाकर वह फल कोतवालको देदिया। परन्तु कोतवालका प्रेम एक वेश्यासे था, अतः उसने वह फल उसको देदिया। वही अमरफल, वह वेश्या राजाको भेंट करदेती है। तब राजा विचार करता है और सबकुछ तुरन्त समझजाता है। तब वह कहता है कि—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥

अर्थात् जिस स्त्रीको मैं अपनी विचार करता हूँ वह मुझसे विरक्त है, वह स्त्री जिसका विचार करती है (कोतवाल), वह स्त्रीसे विरक्त है और वह कोतवाल जिस वेश्यासे प्रेम करता है वह वेश्या कोतवालसे विरक्त है। ऐसे कामियोंका यही स्वरूप है। यह मनुष्य कामके वशमें होकर अपना जीवन खो देता है। धिक्कार है उस स्त्रीको उस पुरुषको, इस कामको और इस वेश्याको और मुझे भी। व्यभिचार 'मनके हारे हार है' की कहानीमात्र है।

एक सिपाही एक वेश्यासे प्रेम करता था। उसके चक्करमें उसने अपना साराका सारा धन उसे लुटा दिया। बहुत दिनोंके बाद जब वह सिपाही बुड्ढा होगया तो वेश्याने उसे उत्तर देदिया और अपने यहां नहीं आने दिया। तब वह सिपाही वेश्याके सामने जो वृक्ष था उसके नीचे बैठा रहने लगा। किसीने उससे पूछा कि तुम यहाँ बैठकर क्या लेते हो? तब वह उत्तर देता है कि मैं यहां इसलिये बैठा रहता हूं कि मेरा इस वेश्यासे प्रेम है। यह मुझे अपने यहां तो आने नहीं देती, कदाचित् किसीसमय किसी कामसे छतपर चढ़े तो उसके दर्शन ही होजाया करेंगे। वह इसीतरह वहां बैठा। तपस्या करता हुआ बैठा। ऐसे कुकर्मी लोग इसीतरह की पीड़ा सहतेहुए बुरी मौत मरते हैं। खोटा भाव विना शिक्षा दिये भी ग्रहणमें

शीघ्र आजाता है। आजका समय बड़ा नाजुक होगया। ऐसे समयमें मातापिता आदिको चाहिये कि जब बच्चा अपनी जवानीके सन्मुख हो तब उसपर पूर्ण निगाह रखनी चाहिये, नहीं तो वह लावारिश-सा होजाता है और बुरी संगतिमें पड़जाता है। कोई बच्चा कहीं भ्रष्ट होजाता है और कोई कहीं। इसलिये उनपर पूरी निगाह रखनेकी आवश्यकता है जिससे कोई प्रकारका उनके दिलमें कुभाव पैदा न होसके। २० वर्ष तकका जीवन इसप्रकार व्यतीत करले तो इनके संतान भी होगी तो ऐसी जो अपनी धर्म-निष्ठा चारित्रशक्तिके द्वारा हर प्रकारके मनुष्योंकी रक्षा करनेमें समर्थ होगी। जितना आज मनुष्य परोपकार कर जाये और अपने आपको सम्यक्ज्ञानसे जितना निर्मल बनाले वही ठीक है। यह सब चीजें यहांकी यहां ही नष्ट होजायेंगी। ऐसा सुनाजाता है कि इस कामवासनाके वश में होकर मनुष्य कहीं कुछ भेदभाव नहीं रखता। बड़े होकर भी कितने ही लोग तो गृह कुटुम्बके परिवारजनोंमें अपनी कुबुद्धि लगाते हैं, यह कहांतक उचित है। ऐसी बात शोभा नहीं देती। पहिले तो एक कथा पुराणकी सुनी जाती है अब कोई कहता है कि किसी घरानेमें भी होने लगा। धिक्कार है कामभावको।

एक राजाके यहां सुन्दर लड़कियां थीं। उनका लड़-

क्रियोंपर व्यसन होगया । तब उसने अपने दरबारियोंसे सलाहकी कि राज्यके अन्दर जो सबसे बढ़िया चीज़ है उसपर किसका अधिकार होना चाहिये । कुछ लोगोंने कह दिया कि राजाका होना चाहिये । फिर उसने यही प्रश्न कुछ ज्ञानी लोगोंसे भी पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, महाराज, पर स्त्री, पुत्री, मां, बहिन आदिके सिवाय और जो बढ़िया चीज़ राजमें हैं, उनपर राजाका ही तो अधिकार होता है । कथा आगे लम्बी है । प्रयोजनमात्र यह है कि कोई एक कथा ऐसी सुनी जाती थी वहाँ भी विवेकसे सम्भाल होजाती थी । आज तो लोग विवेकियोंका समागम न रखनेके कारण अन्धकारमें जारहे हैं । अधिक कष्ट न हो तो कम से कम इतना तो जनसमुदाय करे कि वे सत्पुरुषोंकी सँगतिका अधिकसे अधिक लाभ करता रहे । सत्समागमवालेके कुबुद्धि आवे भी तो वह घर नहीं कर सकती ।

जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं करता, वह जीव नरकों में पड़कर महादुःख भोगता है । परस्त्रीगामियोंको वहां लोहेकी गरम गरम सलाखोंसे चिपटाया करते हैं । नारकी अनेकों दुःख दिया करते हैं । कामका ऐसा खोटा फल हुआ करता है । ऐसा जानकर ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये मन वचनसे इसका पालन करो । ब्रह्मचर्यका विरोधक

केवल अपनेपर ही अनर्थ नहीं करता किन्तु सन्तानपर भी अन्याय करता है। माता पिताके अल्प कुभावसे ही महा अनर्थकृत सम्भव होजाती है।

एक ब्राह्मण माता पिताके एक लड़का था। उन्होंने अपने लड़केसे कहा कि तू विवाह करले। पहले तो वह इन्कार करता रहा फिर जब माता पिताने जबरदस्ती की तो उसने कहा कि हम अन्धी लड़कीके साथ विवाह करेंगे। उसकी शादी अन्धी लड़कीसे करदी गई। उसके तीन लड़के पैदा हुए। तब उस अन्धी स्त्रीने अपने पतिसे कहा कि आप ब्राह्मण हैं और अनेक प्रकारके मन्त्र विद्या आदि जानते हैं। हम चाहते कि हमारी आंखें खुल जायें इसलिये हमारी आंखें खोल दीजिये ताकि हम भी इस संसार को देखलें। ब्राह्मणने कहा कि देखो तुम आंखें मत खुलाओ, परन्तु वह न मानी। तब ब्राह्मणने उसकी आंखें खोलदीं। फिर उसके एक लड़का और पैदा होगया। कुछ दिनोंके बाद स्त्रीने पतिसे कहा कि आप हमारी आंखें क्यों नहीं खोलना चाहते थे। तब ब्राह्मणने कहा कि मेरी बातकी परीक्षा कर देखो। आजके दिन तुम रोटियां मत बनाओ। जब लड़के रोटी मांगने आवें तो उनसे यह कहना कि तुम्हारा बाप हमें पीटता है इसलिये हमने रोटी नहीं बनाई। स्त्रीने ऐसा ही किया। सबसे पहले बड़ा

लड़का आया, उसने कहा माताजी भूख लगी है भोजन दो। तब स्त्रीने उसको बताया कि तुम्हारे पिता मुझसे लड़ते हैं पीट भी देते हैं इससे चिन्तामें मैंने रोटी नहीं बनाई। तब लड़केने उत्तर दिया कि आप माता हैं और वे पिताजी हैं, हमको बीचमें बोलनेका अधिकार नहीं है, परन्तु हमें भूखे तो नहीं रखना चाहिये। दूसरा लड़का आया तो उससे भी उसी प्रकार मांने कहा और उसने भी वैसा ही उत्तर दिया। तीसरेने भी उसीप्रकार का उत्तर दे दिया। अब चौथा लड़का आया जो आंख खुलनेके बाद पैदा हुआ था। स्त्रीने उससे भी वही बात कहदी तो उसने उत्तर दिया कि माँ तुम तो रोटियां बनाओ, मैं बाप बापको अभी देखता हूं कि वह तुम्हें कैसे मारता है। सबकी बातें स्त्रीने अपने पतिसे कहीं। तब पतिने पूछा कि यह बताओ कि जब चौथा लड़का गर्भमें था तब तुम्हारे मनमें क्या विकार आया था। तब स्त्रीने उत्तर दिया कि मेरे मनमें कोई बुरा विकार तो नहीं आया। परन्तु एक दिन मैं छतपर खड़ी थी, नीचे दृष्टि पड़ी तो एक पहलवान जारहा था। तब हमारे मनमें यह विचार अवश्य आया कि पहलवान कैसा हृष्ट पुष्ट शरीर वाला है। इसके अतिरिक्त हमारे मनमें कोई अन्य भाव नहीं आया। तब पति ने कहा कि बच्चेमें तुम्हारे इस विचारका ही प्रभाव आया

है, तभी वह यह बोलनेको तैयार होगया कि मैं बाप बाप को देखता हूँ अम्मां तुम रोटी बनाओ। इसीलिये मैंने तुमसे कहा था कि तुम अपनी आँखें मत खुलवाओ, परन्तु तुम न मानीं और यह बच्चेका ख्याल पैदा होगया। तात्पर्य यह है कि संसारमें गृहस्थोंकी बड़ी जिम्मेवारी है। यदि पूर्ण ब्रह्मचर्यसे भी न रहसको तो कुछ ऐसी कोशिश करो कि भारत भूमिपर ऐसे लड़के तो नहीं पैदा हों जो भारस्वरूप होजायें। इसलिये देश और आत्माको उठाने केलिये ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। इस व्रतका अधिकसे अधिक समयतक पालन करना चाहिये। गृहस्थीमें ऐसे नियम बना लेने चाहियें कि एक मासमें इतने दिन ब्रह्मचर्य रखूंगा। स्त्रीसे पूछ लेना और जो सलाह बैठे सो करलेना। गर्भमें बच्चा आये तबसे लेकर दो सालतक भोग नहीं करना चाहिये। गर्भवती स्त्रीसे भोग नहीं करना और बच्चा पैदा हो उसके बाद भी २ वर्ष पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सन्तानपर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जिसको अपने शुद्ध स्वभावका ज्ञान होगा उसके मनमें कभी दुष्ट चेष्टा नहीं होगी। मन गन्दी ओर गया कि पीड़ा होने लगी और जहां बुरे कामोंकी ओर दृष्टि नहीं होगी वहां पीड़ा चित्तमें आयेगी ही कैसे? ब्रह्मचर्य अपनी ताकतसे कभी

स्त्रीको बुरे कामोंकी ओर दृष्टि नहीं होगी।

ब्रह्मचर्यव्रतसे ही मनुष्य संसारसमुद्रसे पार होता है। कुशील, परस्त्रीगमन, कामवासना, व्यभिचार आदिसे वह कभी शान्ति नहीं पासकता और न मोक्षमार्गका पालन करसकता है। इस ब्रह्मचर्यव्रतके बिना तपस्या आदि करना सब व्यर्थ है।

जगत चवेना कालका, कुछ मुखमें कुछ गोद।
विषय सुखनके राजमें, मूरख माने मोद॥

अर्थात् यह जगत् कालका चवेना है। कोई तो कालके मुखमें है, कोई कालकी गोदमें है और कोई हाथमें है। ये जगत्‌के प्राणी बहुत देर तक तो रह नहीं सकते, जीवन और यह समागम सब क्षणभंगुर है फिर किसकेलिये यह खोटे काम किये जायें? आजन्म ब्रह्मचर्य लोग यही सोच कर पालते हैं। ब्रह्मचर्यपालनमें सन्देह क्या जब मन ही में कोई बात नहीं आती। भूखकी व्यथा तो कठिन है पर व्यभिचारकी व्याधि कठिन नहीं। मनका विकल्प दूर हो तो ब्रह्मचर्यका पालन होजायेगा। इसके पालनमें बड़ीसे बड़ी स्थिरता रहनी चाहिये।

हे भव्यजीव! इस बाह्यस्पर्शन इन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो। उससे आत्माको बचाओ। ब्रह्मचर्यका आनन्द

तो ज्ञानस्वभाव निज आत्मामें शान्तिसे स्थिर होजाना है। वहां ब्रह्मचर्यका परम महात्म्य मालूम होता है। वैराग शतक जो भर्तृहरिका बनायाहुआ है उसमें लिखा है कि—

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः।
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः॥
मुक्त्वैकं भवदुःख भाररचनाविध्वंसकालानलं।
स्वात्मानन्द पदप्रवेश कलनं शेषा वणिग्वृत्तयः॥

अर्थात् वेदों और शास्त्रोंके पढ़नेसे और यन्त्रों कर्म कार्यके करनेसे क्या आत्मामें राग द्वेष दुःखकी ज्वाला जो जलरही है उसको नष्ट करनेमें समर्थ यह ज्ञानदृष्टि ही है? इसके अतिरिक्त आत्मा किसी भी तरह शान्ति नहीं प्राप्त करसकता। बाह्यमें यह विषयकषाय होते हैं, जिनकी प्रवृत्तिमात्र से कोई शान्ति और सुख चाहे तो नहीं हो सकता। यह तो एक ज्ञानभावकी भावनासे ही मिलसकता है। बाह्यस्पर्शन इन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो और अपनी आत्मामें ही परम ब्रह्मचर्यव्रतको देखो। इसका स्वरूप ज्ञानस्वभाव यह निज आत्मतत्व, घट घटमें विराजमान है। क्यों उसपर दृष्टि नहीं पहुंचती? इसलिये कि हम बाह्य पदार्थों में लक्ष कर करके आध्यात्मिक विचार भुलाते हैं। इन बाह्य पदार्थों से दृष्टि हटाई जाये तो आध्यात्मिक वैभव आजाता है।

एक स्थानपर जिनेश ध्यानमें मग्न थे। कामदेव और रति वहां आपसमें बातें करते जारहे थे—

कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, हूं हूं प्रतापी प्रिये।
हूं हूं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियां।
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयं।
इत्येवं रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः॥

रतिके 'यह कौन है' ऐसा पूछनेपर कामदेव कहता है कि यह जिनेन्द्र है। रति पूछती है कि क्या ये भी तुम्हारे वशमें हैं? कामदेव ऊं हूँ के संकेतसे इन्कार कर देता है। फिर रति कहती है तो फिर आजसे तू अपना घमंड छोड़दे कि मैं सारे जगत्को वशमें किये हुए हूँ। तब कामदेव बोला कि इन्होंने मोहको ही जीतलिया है अतः हम किंकर इनको क्या वशमें करसकते हैं। इनके अतिरिक्त हमने सबको जीतलिया है। ब्रह्मा, विष्णु आदि सब जगत् मेरे वशमें होगया। बड़े बड़े पुरुषोंको मैंने वशमें करलिया। इसतरह जिसके विषयमें काम व रति कल्पना कररहे हैं वह जिनेन्द्र हम तुम सबकी रक्षा करे। रक्षक यहां भी निजभाव ही है। ऐसे जिनेन्द्रकी आराधना निर्विकार, निर्विकल्प ज्ञानरूप परमात्माकी आराधना हमारे हितकेलिये है। वैसे तो पुजारी सभी हैं, भक्त सब

ही हैं, पूजा और भक्तिके विना कोई नहीं रहता। कोई स्त्रीका पुजारी है, कोई पुत्रका पुजारी है, कोई देशका पुजारी है तो कोई जिनेन्द्रका पुजारी है, कोई भगवानका पुजारी है और कोई अपने निज ज्ञानस्वभाव का भक्त है। जिनके मिथ्यात्वका उदय होता है उनकी भक्ति खोटे विषयोंमें पहुंचती है और जिनके सम्यक्तका विकास होता है उनकी भक्ति निज आत्मा स्वरूप और परमात्मामें रहती है।

इसतरह कहागया है कि आत्मामें लीन होना ही परम ब्रह्मचर्य है। मैं जगत्को करता हूँ, ऐसा परिणाम मिथ्या है। प्रत्येक वस्तु स्वावस्थासे है, फिर भी मैं पर का हूँ, इसप्रकार की श्रद्धा होना व्यभिचार है। अपने ज्ञानस्वभाव आत्माके प्रति अविश्वास व्यभिचार है। मैं जगत्के बाह्यपदार्थोंसे भिन्न निज ज्ञानस्वभाव चैतन्यस्वरूप आत्मा यही मैं हूं, उसीमें लीन होना सो उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है। ज्ञानस्वभाव की दृष्टि स्थिर करना यह उत्तम ब्रह्मचर्यके पानेका बाह्य साधन है। जो अपनी आत्मामें ही लीन है उसको यह ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त होगा। ज्ञान की ओर दृष्टि रखना, अन्य विकल्पमें न पड़ना ब्रह्मचर्य साधना का उत्तम उपाय है।

ही पूर्ण ब्रह्मचर्य होता है। इन सब बातोंकेलिये व्यवहार नयसे सर्वपरिस्थिति जानकर शुद्धनयसे आत्माके एकत्व का आलम्बन करना चाहिये। इसकी श्रद्धान ज्ञान आचरणपर्यायकी निर्मलताका कारण हो होकर एकत्व-निर्विकल्प अवस्थामें अमित व द्रव्यानुसारि होजाते हैं। यही परम कल्याण है। इसकी दृष्टि पावो।

सत्यप्रकाशन

	ग्रन्थ नाम (प्रकाशित)	पृष्ठ	मूल्य
१	आत्मसंबोधन	३१७	१।)
२	धर्मबोध (पूर्वार्द्ध)	४८	।)
३	धर्मबोध (उत्तरार्द्ध)	१११	॥)
४	तत्वरहस्य	१५६	१)
५	सहजानन्दगीता (सान्वयार्थ)	२१५	१)
६	मनोहर पद्यावलि	१००	।=)
७	सुख कहाँ ?	११३	।=)
८	अध्यात्म चर्चा	६०	॥)
९	समस्थानसूत्रविषयदर्पण	१४०	॥=)
१०	जीवस्थान चर्चा	२४१	१॥)
११	विषापहार स्तोत्र-अध्यात्मध्वनि सहित	४०	।–)
१२	कल्याण मन्दिर स्तोत्र	४४	।)
१३	समस्थानसूत्र (प्रथमस्कन्ध)	३८०	२)
१४	एकीभावस्तोत्र अध्यात्मध्वनि सहित	३८	।)

१५ (ट्रेक्ट प्रत्येक का मूल्य ६।) सैकड़ा)

१. सामयिक पाठ २. अपनी बातचीत (Talk to Self) ३. वास्तविकता (Reality) ४. आत्म कीर्तन (Psalm of the Soul) ५. मेरा धर्म ।

पुस्तकें मिलने व पत्र व्यवहार का पता :—

मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला.

२०१, पुलिस स्ट्रीट, मेरठ सदर (यू० पी०)

मैनेजर श्री दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत ।

श्री वीर पुस्तकालय, श्री महावीर जी ।